न्यूमोनिया-प्रकाश

लेखक—

पं० देवकरण जी वाजपेयी वैद्य शास्त्री

उत्तरीपुरा (कानपुर)

चौखम्बा-संस्कृत-पुस्त...

पो० बाक्स नं० ८,

द्वितीय बार
२०००

१९५१

मूल्य
।=)

प्रकाशक—

वैद्य देवीशरण गर्ग
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़ (अलीगढ़)

—×—

मुद्रक—
श्री धन्वन्तरि प्रेस
विजयगढ़।

दो शब्द

अखिलेश्वर की असीम अनुकम्पा से यह निमोनिया प्रकाश प्रकाश मे आरहा है। वैद्यक साहित्य मे ऐसी उपयोगी रचनाये अधिकाधिक आवश्यक है। अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखी गई कतिपय पंक्तियां भी समय पर प्रचुर सहायता देती हैं। आशा है कि यह प्रयास भी वैद्यवरों को उपयोगी होगा।

इसके लेखक--आयुर्वेद मन्त्री पंडित देवकरणजी वाजपेयी, वैद्य-संसार मे सुपरिचित हैं। आपके प्रपितामह, पितामह और चाचाजी सुयोग्य चिकित्सक थे और मातामह श्री पं० अधारी लाल जी मिश्र कन्नौज तो नयपाल के राजवैद्य रहे। पंडित देवकरणजी ने भी सर्वश्री स्वर्गीय पं० कन्हैयालाल जी वाजपेयी शास्त्री पं० रामआधारजी त्रिपाठी वैद्यशास्त्री, पं०रामचन्द्रजी मिश्र वैद्यशास्त्री और आयुर्वेदाचार्य पं० वेणीमाधव जी शास्त्री व्याकरणाचार्य के चरणों मे आयुर्वेदाध्ययन किया और वैद्यशास्त्री की परीक्षा मे रजतपदक लेकर उत्तीर्ण हुये।

तदुपरांत त्रिवेणी भंडार के आयुर्वेद कुटीर में प्रधान वैद्य के पद पर रहे और कुछ समय में ही स्वकीय श्रीगोपाल दातव्य औषधालय उत्तरीपुरा (कानपुर) में खोल दिया जो बड़ी सफलतापूर्वक लोक-सेवा कर रहा है। जगद्गुर प्रतिवादि भयङ्कर पूज्यपाद श्री० १००८ स्वामी बालाप्रसाद जी मिश्र के चरणों मे आपने विशेष ज्ञान प्राप्त किया और वनस्पत्यनुभव आपके सम्मान्य श्वसुर श्री० पं० देवी-प्रसाद जी अवस्थी तहसीलदार से यथेष्ट मिलता रहा है। यही कारण है कि आपकी रचनायें उपयुक्त और सारगर्भित होती हैं।

सर्व प्रथम करांची वैद्य सम्मेलन में आपने 'अर्श' पर निवन्ध भेजा, उस पर प्रथम श्रेणी का प्रशंसापत्र, रजतपदक और वैद्यराज पद प्रदान किया गया। फिर पंचम पंचनद सम्मेलन में हिस्टेरिया पर प्रबन्ध भेजा। वहां से भी प्रथम प्रशंसापत्र प्राप्त हुआ। षष्टम सम्मेलन जलंधर में राजयक्ष्मा पर आपकी विस्तृत रचना प्रथम श्रेणी में प्रशंसित और रजतपदक विभूषित की गई और उससे पूर्व १९३२ में बीकानेर सम्मेलन में भेजा हुआ यह "न्यूमोनिया-प्रकाश" भी रजतपदक पुरस्कार प्रथम श्रेणी मे प्रशंसित हुआ जो आपके कर कमलों में अर्पित है। आप महानुभावों ने इसे प्रेम-पूर्वक अपनाकर उत्साह बढ़ाया तो श्री० पंडित जी की अन्यान्य रच-नाये भी शीघ्र प्रकाशित होकर सेवा में पहुचेंगी।

न्यूमोनियां एक भीषण दशा है इसमें संदेह नहीं, पर योग्य चिकित्सा से यह रोग असाध्य नहीं है। आजकल प्रतिष्ठित पाश्चात्य पद्धति में भिन्न २ कारणों और लक्षणों के पीछे दौड़ते हुए इसके अनेक नाम रूप कर लिए गए हैं जिनका कुछ उल्लेख यहां

कर देना उचित होगा। 'डिप्लोकोक्कसन्यूमोनाई' रोगाणु से होने वाला न्यूमोनियां लोबर न्यू० (Lobar) क्रूपस न्यू० (CroupusP) फाइब्रिनस न्यू०(Fibrinous P.) या ऐक्यूट न्यू० (Acute P.) है और भारत में यही अधिक होता है। यदि फुफ्फुस के एक खण्ड से दूसरे खण्ड मे रोग चलता फिरे तो उसे माइग्रेटरी न्यू० (P. Migrans) कहते हैं। वृद्धावस्था मे तन्तु निर्बल और रक्त संचार दूषित होजाने से यह रोग होने पर हाइपोस्टेटिक न्यू० (Hypo-static Pneumonia) कहलाता है। यदि दोनों ओर के फेंफड़े आक्रांत हो जावें तो उसे डबल (Double) न्यूमोनियां कहते हैं।

जिस दशा में श्वास नलिकायें bronchii अधिक आक्रांत हों उसे ब्रोंकोनिमोनिया (broncho-pneumonia) कहते हैं। थोड़े बहुत भेद से इसी को लोब्यूलर न्यू (Lobuler P.) कटारल Catarrhal P.) ब्रोंकियल न्यू० (bronchial P.) डेग्लूटीशनन्यू० (Deglutition P.) इन्ड्यूरेटिव न्यू. (Indurative P.) इन्सुलर न्यू० (Insuler P.) ट्यूब्यूलर (Tubuler P.) अथवा वैसीक्यूलर Vesiculer न्यूमोनियां आदि अनेक नाम कहे जाते हैं। यही यदि विकारी (Septic) वस्तु सूंघने से उत्पन्न हो तो सैप्टिक (Septic) न्यूमोनियां कहते हैं।

जिसमें पीप अधिक हो वह प्यूरुलेंट न्यू० (Purulent P.) और जिसमें प्रलाप मोह आदि दिमागी विकार अधिक हों वह सैरिब्रल (cerebral) न्यूमोनिया कहा जाता है। शुरू से

अन्त तक फेफड़े में तेज रक्तसञ्चय रहे तो ऐब्रोर्टिव न्यू० (Abortive P.) और जहां पहिले फेफड़े का भीतरी भाग सूजे, पीछे बाहरी, वह सैंट्रल (Cantral) निमोनिया माना जाता है, इसमे जब तक सूजन अन्दर ही रहती है, तब तक विशेष कोई लक्षण प्रगट ही नहीं होता।

रक्तवाहिनियों में रुकावट होने से एंबोलिक न्यू० (Embolic P.) कहते हैं, फुफ्फुस अवरण के शोथ (पार्श्वशूल) के बाद प्लूरोजैनिक (Pleuro genic) न्यूमोनिया होता है। इस प्लूरा के निकटवर्ती ऊपरी भाग में शोथ हो तो–सुपरफिशियल न्यू० (Superficial P.) कहलाता है। केवल फुफ्फुस शिखर (चोटी Apex) ही सूजी हो तो एपिकल न्यू० (Apical P.) कहते हैं–और फुफ्फुस के संयोजक तंतु सूजकर परस्पर वाधा और विकार उपस्थित करें तो–इन्टरस्टिशियल न्यू० (Interstitial P.) फाइब्रोइड न्यू० (Fibroid P.) क्रौनिक (Chronic) निमोनिया या फुफ्फुस शोष (Cirrhosis of the lung सिर्होसिस ऑफ दी लङ्ग) कहते है।

श्वास नलिकाओं के किनारे २ की सेलें ही मुरझा जावें तो डिस्कामेटिव (Desquamative) निमोनिया होता है। इसमे बहुत चिकटा, लालायुक्त कफ निकलता है। यदि वायु कोषों के साथ साथ तमाम फुफ्फुस खण्ड श्लेष्मा से भर जाय तो मैसिव न्यू० (Massive p.) कहा जाता है। जिसमे मंथर ज्वर (Typhoid) टाइफाइड) के लक्षण प्रबल हों उसे 'टाइफाइड निमोनिया' कहते है।

दो निमोनिया बहुत कृच्छ साध्य होते हैं:-एक-शराबियों का (एल्कोहोलिक alcoholic) जिसमें बहुत प्रलाप होता है, और दूसरा-उपदंश रोगियों का सिफलिटिक (Sypnilitic) या श्वेत white ह्वाइट) जिसमें फुफ्फुस अंदर सफेद पाया जाता है। माता पिता के दोष से शिशुओं को यह अधिक होता है। इन दो-एक भेदों के सिवा सब दशाएँ, योग्य वैद्य, भगवान की कृपा और कुशलता से सम्यक् रूपेण आराम कर सकते हैं। ये सब मोटे तौर से, दशा भेदानुसार उन्हीं स्वरूपों में आजाती हैं जो आगे के प्रृष्ठों में पाइयेगा। इतने नाम भेद इस लिये कहे गये हैं जिससे रोग फुफ्फुस के अंश में-किस दशा में है इसका ठीक-ठीक निर्देश कर सकें। चिकित्सा में प्रायः एकाध खण्ड का (Lobar) न्यूमोनिया और वायुनलिकाओं का (Lobular) ब्रोंकोन्यूमोनिया ये दो ही प्रधान भेद ध्यान में रखने होते है। साथ ही चाहे भेद का ठीक ठीक नाम निश्चित हो या न हो इन समस्त भेदों में पीड़ा दाह और शोथ की न्यूनाधिकता के अनुसार वात, पित्त और कफ की हीन, मध्य, प्रवृद्धता का अन्दाज करके चिकित्सा कर सकते हैं। पंडित जी ने इस पर अधिकतर अनुभव सिद्ध चिकित्सा अङ्कित की है। वह, आपके द्वारा, आर्त्त बन्धुओं का कष्टमोचन करे-यही परमेश्वर से प्रार्थना है।

विनीति—

बिजयगढ़
श्रावणी पूर्णिमा
१९९२. वि०

गणपतिचन्द्र केला
सम्पादक धन्वन्तरि।

सं० ४ ॥ जयति धन्वन्तरिः ॥

निखिल भारत वर्षीय—

२३ तम वैद्य सम्मेलनम्

बीकानेर नगरम्।

प्रमाण पत्रम्

अयं श्री. देवकरण वाजपेयी वैद्यशास्त्री साहित्यरत्न उत्तरीपुरा कानपुर वास्तव्य, चरकादि महर्षिजन समुद् वृन्हितस्य प्रसिद्धतमाऽयुर्वेद शास्त्रस्य महताश्रमेण निखिल-विज्ञानावगाहन सौभाग्यमुपास्य सर्वाऽनुमोदितैः तत्रत्य सिद्धांतैः निमोनियां विषये परम सुन्दरं गवेषणात्मकं लेखं लिखितवान् रजतपदकं च प्राप्तवान् तत्कृतेऽस्य विदुषो महतीमवबोधक्षमतां सबहुमानं प्रख्यापयति प्रमाणपत्रमेतत्।
वितरण तिथिः—२० दिसम्बर सन् १६२२

मौहर सम्मेलन

सम्मेलनाऽध्यक्षः
डा० ए० लक्ष्मीपति B. A.
M. B. L. C. H.

महामन्त्रीः
जीवनराम हर्ष
आयुर्वेद भूषण

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

न्यूमोनिया प्रकाश

"यत्प्रभा पटलोद्भासि, भासतेद्यापि भारतीम्।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम ॥"

× × ×

अनेक भाषाओं के नाम-

संस्कृत में—फुफ्फुस ज्वर, कर्कोटक सन्निपात, श्वसनक ज्वर और फुफ्फुस प्रदाह कहते हैं।

हिन्दीमें-फुफ्फुस प्रदाह, फुफ्फुस सन्निपात और निमोनियां कहते है।

अंग्रेजी में-न्यूमोनियां Pneumonia कहते हैं।

फारसी में-जातुरिंया कहते हैं।

शरीर और निमोनिया

शरीर और उसकी रचना, उसके प्रथक २ अवयव और उनकी बनावट, धर्मज्ञान निदानादि के प्रथम प्रत्येक वैद्य को इसका जानना परम आवश्यकीय है। परन्तु इस स्वल्प स्थान में शरीर की अति सूक्ष्म दृष्टि से व्याख्या करना एक वृहत् ग्रन्थ को निमंत्रण देना है। अस्तु! इस स्थान पर निमोनियां से सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण अङ्गों की विवेचना न करके केवल उस अङ्ग का ही दिग्दर्शन करा देना चाहते हैं, जिससे निमोनियां का घनिष्ट और सर्व प्रथम सम्बन्ध होता है।

फुफ्फुस (फेफड़े लंग्स)

प्राणिनांयकृत लीहौ शोणितात् प्रभवौ मतौ।
शोणितान् प्रभवं फेन तस्माज्जातोहि फुफ्फुसः ॥१॥
यस्तु शोणितजः किट्टस्तस्मात् क्लोम प्रजायते।
मेदा शोणित सम्भूत कोष्ठे चान्त्रं प्रजायते ॥२॥

(पाराशरि संहितायां)

अर्थात्—रुधिर के फेन से फुफ्फुस बनता है, यह छाती के दोनों ओर दो होते हैं। ये रुधिर को पतला कर बहाते हैं। जैसा लिखा है किः

"हृदयाद्वामतोऽधश्च फुफ्फुसो रक्तफेनजः"

अर्थात्–हृदय से बांई ओर नीचे को, रक्त के फेन से उत्पन्न होने वाला "फेफड़ा" होता है।

सूक्ष्म विचार-

फुफ्फुस के अनेक छोटे २ अंश होते हैं जो परस्पर में सौत्रिक तन्तुओं द्वारा जुड़े रहते हैं। प्रत्येक अंश को एक सूक्ष्म परिमाण का फुफ्फुस समझना चाहिये, इसीसे वायु नलिका लगी रहती है। यह नलिका असंख्य कोठरियों से संबन्ध रखती है, जिन्हें वायु-कोष्ठ या वायु मन्दिर कहते हैं, इनकी दीवारें सेलों से बनी होती हैं। फुफ्फुस के प्रत्येक अंश में रक्त और लसीका की सूक्ष्म नलियां, केशिकायें और वात-सूत्र रहते हैं।

यह सब सूक्ष्म वायु प्रणाली, वायु मन्दिर, रक्त और लसीका की नलियां और केशिकायें तथा वात सूत्र परस्पर में सौत्रिक तन्तु की सहायता से इकट्ठी रहती हैं। ऐसे २ हजार खंडिकाओं के आपस में मिले रहने से फुफ्फुस बनता है यह स्पंज की आकृति का और उसी के समान मृदु होता है। (दाहिना और बांया) इस प्रकार फुफ्फुस दो होते है और छाती के खोल में रहते हैं। इन्हीं दोनों के बीच हृदय (दिल या हार्ट) रहता है, दोनों फेफड़ों का वजन सेर सवा-सेर होता है तथा रंग [नीला] भूरा होता है।

फुफ्फुस के वायु मन्दिर की रचना—

जैसे बड़े २ मकानों में छोटी २ अनेक कोठरियां होती हैं, वैसे ही इस वायु मन्दिर में भी हैं और उन्हें वायुकोष कहते हैं। इसका आकार शहतूत से बहुत कुछ मिलता है। शहतूत को उसके

ऊपर के दानों और टेटीं समेत खोखला कल्पना किया जाने पर वायु मन्दिर का स्वरूप समझते विलम्ब नहीं लगता।

अर्थात्–शहतूत की खोखली टेटी मानो सूक्ष्मवायु प्रणाली (नलिका) हुई और खोखला शहतूत वायु मन्दिर। उस खोखले के दाने अन्यान्य सूक्ष्म वायुकोष्ठ हुये। एक सूक्ष्म वायु-प्रणाली के द्वारा वायु बहुधा एक से अधिक मन्दिरों में जाया करता है।

शवच्छेदकों का अनुमान है कि दोनों फुफ्फुसों में वायु मन्दिरों की संख्या १६ से १८ करोड़ के लगभग होती है। यदि इन कोठरियों को खोलकर इनकी दीवारें पृथ्वी पर बिछादी जा सकें तो इनका क्षेत्रफल १३० से १५० वर्ग गज होगा और इसी हिसाब से ३६ फुफ्फुसों की कोष्ठ दीवारों का क्षेत्रफल १ एकड़ होगा।

वायु कोष्ठ--

वायुकोष्ठ अर्द्ध गोलाकार होते हैं। इनकी दीवारें पतली और चपटी सेलों से बनी होती हैं, सेलों के बाहर की तरफ पीले स्थिति स्थापक सौत्रिक तंतु की एक पतली तह रहती है और इस तह में रक्त केशिका का जाल फैला रहता हैं। केशिका के रक्त और कोष्ठों की वायु के बीच में, केवल केशिका नली और वायु कोष्ठ की पतली दीवारें होती है।

श्वास कर्म--

वायु का फेफड़ों के भीतर जाना और फिर बाहर निकलना श्वास कर्म कहलाता है। यह २ प्रकार का है।

१–उच्छ्वास या अन्तःश्वसन। २–प्रश्वास या बहिश्वसन।

१–उच्छ्वास या अन्तःश्वसन–एक बार श्वास नासिका में होकर फुफ्फुसों के भीतर प्रवेश करती है। इसके कारण छाती फैलकर पहिले से बड़ी होजाती है। इसे उच्छ्वास कर्म कहते हैं।

२–प्रश्वास या बहिःश्वसन–फिर वायु नासिका से बाहर निकलती है, छाती भी पूर्व दशा को प्राप्त होती है। फुफ्फुस सिकुड़ कर छोटे हो जाते हैं। इसे प्रश्वास कर्म कहते हैं।

इस प्रकार एक उच्छ्वास और एक प्रश्वास से एक बार का श्वास कर्म पूर्णता को प्राप्त होता है। और प्रौढ़ मनुष्य १ मिनट में १६ से २० बार तक श्वास लेता है। बाल्यकाल में यह संख्या अधिक होती है, नवजात शिशु प्रति मिनट में ४४ बार तक और ५ वर्ष की आयु में २५–२६ बार श्वास लेता है।

फुफ्फुसों द्वारा रक्त की शुद्धि--

शरीर में सेलों के टूटने-फूटने और भांति २ की रसायनिक क्रियाओं के होने से कार्बोनिक एसिड गैस (CO) नामक विषाक्त पदार्थ बनता रहता है, इसका स्वभाव ज़हरीला है। जिस रक्त में इसका परिमाण अधिक होता है, उसका रङ्ग स्याही मायल होता है वह नीला काला रक्त शरीर के सब भागों से इकट्ठा होकर हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में दो महाशिराओं द्वारा पहुंचता है। वहां से फुफ्फुसीया धमनी द्वारा वह दोनों फुफ्फुसों में जाता है और उन केशिकाओं में पहुंचता है जो वायु-कोष्ठों की दीवारों में रहती है।

इस स्थल में इस रक्त से कार्बोनिक एसिड गैस (वायु) बाहर निकलती है, और उसकी जगह [वायु में से] आक्सीजन गैस आ जाती है यह सब क्रिया फुफ्फुसों में उच्छ्वास और प्रश्वास द्वारा होती ही रहती है। इससे रक्त शुद्ध होता रहता है। ऐसा शुद्ध रक्त [फुफ्फुसीय सिरा द्वारा] हृदय के वाम भाग में जाकर सारे शरीर का पालन करता है।

इस प्रकार हमारे प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्गों का रक्त से ही पालन पोषण होता है और इसी कारण से वायु [प्राण] जीवन के लिये बहुत जरूरी है। तथा अशुद्ध वायु शरीर के लिये बहुत ही हानिकारक है क्योंकि इसमें विष का अधिक अंश तथा मांस के लोथड़े और अनेक तरह के कीटाणु आदि २ मिले रहते हैं जो वायु द्वारा शरीर में पहुंचकर रक्त को दूषित कर दिया करते हैं।

इसका अधिक विस्तार न लिख कर अब रोग निदान और उपचार पर आते हैं।

रोगी के कर्त्तव्य-

(१) रोगी को वैद्य का पूर्ण आज्ञाकारी होना।

(२) पथ्य का पूर्णतया पालन करना और अपथ्य से कोसों दूर रहना।

(३) छल-छिद्र, दम्भ, कपट, मिथ्या भाषणादि से सर्वदा बचना।

(४) ब्रह्मचर्य व्रत को नियमानुसार पालन करना।

(५) प्रकृति के नियमों के विरुद्ध न चलना।

निमोनिया में वैद्य ध्यान रखें-

१- श्लेष्मा में लाली होती है। यदि इसकी लाली बढ़ जावे तो कष्ट-साध्य है।

२—श्वास-नाड़ी की विकृति।

३—मूत्र की अवस्था।

४—रक्त में श्वेताणुओं की वृद्धि।

५—निमोनियां एक फुफ्फुस (सिंगल) में अथवा दोनों फुफ्फुसों में (डबल) है। दोनों फुफ्फुसों का भयानक होता है।

आयुर्वेदीय निदान में निमोनिया—

निमोनिया कोई साधारण रोग नहीं है, यह अत्यन्त कष्ट-दायक और भयानक रोगों में से है। वर्तमान में इसे संक्रामक और बहु व्यापक कहा जाता है।

आजकल प्रचलित आयुर्वेदिक ग्रन्थों में किसी जगह भी इसका इस नाम से स्वतन्त्र वर्णन नहीं पाया जाता। हां ! प्राचीन रक्तष्ठीवी, उरुक्षत, क्षतजकास, पार्श्वशूल, अभिन्यास, कर्कटक ज्वर आदि २ रोगों के कुछ २ लक्षण इसमें अवश्य पाये जाते हैं।

चरकोक्त कफोल्वण मध्यवात हीनपित्त को ही तन्त्रान्तरों ने 'कर्कोटक' सन्निपात माना है और इस ही के विशेष लक्षण "निमोनिया" रोग में पाये जाते हैं तथा भावमिश्र जी ने भी कर्कोटक-सन्निपात ऐसा ही माना है।

रक्तष्ठीवी; पार्श्वशूल अभिन्यास आदि २ के केवल दो ४ (चार) लक्षण ही इस रोग में पाये जाते है, विशेष नहीं। जैसे रक्तष्ठीवी सन्निपात से इसके बहुत से लक्षण मिलते हैं। किसी २ ने निमोनिया को राजयक्ष्मा या सिल लिखा है। यह उन्होंने कफ के साथ खून आने की वहज से लिखा है। राजयक्ष्मा या सिल मे इसके से लक्षण बहुत दिनों में होते हैं, परन्तु निमोनिया मे सब लक्षण चटपट होते हैं और—

रक्तष्ठीवी में–मुख से थूक के साथ खून आता है, निमोनिया में भी खून आता है। रक्तष्ठीवी में ज्वर, प्यास, वेहोशी, दर्द, श्वास, वगैरह लक्षण होते हैं, ये निमोनिया में भी होते है। रक्तष्ठीवी में नेत्र लाल होते हैं, निमोनिया में भी नेत्र लाल होते हैं। रक्तष्ठीवी में जीभ काली हो जाती है, निमोनिया में–नीली हो जाती है। (यह कोई भेद नहीं है) रक्त-ष्ठीवी में अतिसार और खून के चकत्ते होना बेशक अधिक लिखा है।

परन्तु प्रायः निमोनियां के लक्षण वर्कोटक सन्निपात और वैदारिक सन्निपात से मिलते है और विशेषतः विद्वानों की भी इसी निदान विशेष की सम्मति है, जिसका वर्णन आगे किया जायेगा। पहिले यहां पर कुछ डाक्टरी मत का भी दिग्दर्शन करा देना आवश्यकीय है।

न्यूमोनिया पर डाक्टरी मत–

डाक्टरी में निमोनिया के ५ भेद लिखे हैं—

१-निमोनिया ।

२-ब्रङ्कोनिमोनिया या लोब्यूलर निमोनिया ।

३-पुराना इन्टरस्टिशिनल निमोनिया ।

४-फुफ्फुस की गैंग्रिन ।

५-फुफ्फुस में कैन्सर (नासूर) ।

अब इनके लक्षण लिखते हैं—

१-(साधारण) निमोनिया PNEUMONIA

इस रोग में फुफ्फुस के दाहिने बायें बहुत जलन होती है और नीचे की ओर दर्द होता है। इस निमोनिया के पैदा होने के पहिले ज्वर आता है, कम्प होता है, और खांसी चलती है। बहुत दिन पहिले भूख कम हो जाती है। कमजोरी हो आती है। हाथ, पैर और छाती में दर्द होता है। श्वास जोर से चलता है नाड़ी तेज हो जाती है, जीभ और होठ नीले हो जाते हैं एवं धीरे धीरे इस रोग में रोगी की चैतन्यता का नाश होकर मृत्यु होजाती है।

यह रोग ६ से ८ दिन तक बहुत कष्ट देता है, खांसी और श्वास से भयानक कष्ट होता है। उठ कर बैठने में या जोर से श्वास लेने में खांसी आती और उसके साथ खून आता है। जब रोगी की मृत्यु होने का खतरा होता है, तब उपरोक्त लक्षण या तो कम हो जाते है या बिल्कुल ही नहीं रहते ।

इस रोग में पहिले बलगम पतला २ आता है, पीछे दो एक दिन में खूब गाढ़ा आने लगता है। कभी कभी २-१ घण्टे में ही

आटे की तरह आने लगता है, कफ में कुछ सुर्खी सी मिली रहती है यानी कुछ खून का अंश रहता है रोगी का ज्वर ही बढ़ता जाता है। पहिले दिन ताप १०२° से १०४° डिग्री तक और तीसरे दिन १०७° से १०६° डिग्री तक देखा जाता है। १०६° डिग्री का ताप होने पर रोगी का बचना कठिन हो जाता है नाड़ी की चाल यद्यपि सर्वत्र समान नहीं होती, फिर भी तीसरे चौथे दिन १०२ से १०३ तक हो जाती है। सिर में बड़ी वेदना होती है, नींद नहीं आती बेचैनी बढ़ जाती है, पेशाब के साथ भी खून की झलक आती और उसके साथ धातु भी मिली रहती है। इसे फुफ्फुस का प्रदाह भी कहते हैं।

२--लोब्यूलर या ब्रांको निमोनिया--

(Lobular or Broncho Pneumonia)

इसके, सब लक्षण निमोनिया के से ही होते हैं। अन्तर केवल इतना ही है, कि साधारण निमोनिया की तरह इसमें कम्प आदि लक्षण नहीं होते। ताप १०३ से १०५ डिग्री तक रहता है, कभी २ ज्वर बढ़ जाता है, नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है।

३-पुराना या इन्टरस्टिशियल निमोनिया-

(Chronic or Interstitial Pneumonia)

प्रथम का लिखा हुआ निमोनिया जब पुराना हो जाता है, तब पसली में एक ओर खिंचाव सा होता है, श्वास और खांसी

बढ़ जाते हैं, कफ बड़ी कठिनता से निकलता है और उसमें बहुत ज्यादा दुर्गन्ध होती है। तब यह रूप समझा जाता है।

४—गलित निमोनिया—

(Gangrenous pneumonia)

पुराना निमोनिया होकर, जहरीले कीड़ों के जहर से, खून के जहर से अथवा उपदंश से भी यह रोग हो जाता है। इसमें फुफ्फुस में बड़ी तकलीफ होती है।

५—फुफ्फुस में कैन्सर वाला निमोनिया—

(Cancrus pneumonia)

यह रोग बहुत कम देखने में आता है। इसे कोई संक्रामक या छुतहा कहते हैं, और वंशपरम्परा से होने वाला बताते है। इसमें—श्वास, खांसी, तीर छेदने की वेदना, दबाने से तकलीफ बढ़ना, खांसी के साथ कफ निकलना ये लक्षण होते हैं। कभी कभी फुफ्फुस से खून भी आता है, बुखार रहता है, रात में पसीना आता है, और रोगी कमजोर हो जाता है।

तात्पर्य

असल में निमोनिया, सन्निपात ज्वर की एक अवस्था का नाम है, सन्निपात ज्वर के साधारण लक्षण के सिवाय और भी कई विशेष लक्षण होते हैं। निमोनिया होने के पहिले एक दम से कमजोरी आजाती है और क्षुधा नाश हो जाती है। जब निमोनिया

होता है तब पहिले जाड़े का बुखार आता है, सर मे दर्द होता है क्षय होती हैं, रोगी आयं वायं बकता है और पैर पटकता है। जब रोग बढ़कर पूर्ण रूप से प्रगट होता हैं, तब छाती के छूते ही दर्द होने लगता है, श्वास लेने में कष्ट होता है, खांसी का बड़ा जोर रहता है, मैला और गाढ़ा तथा लसदार कफ निकलता है। यदि यह कफ बर्तन में रख दिया जाय तो कफ साधारणत छुटता नहीं है, कभी २ उस कफ के साथ जरा २ खून भी आता है।

जब एक सप्ताह बीत जाता है तब पेशाब और पसीना बहुत आता है। नाड़ी की चाल हर मिनट में ९० से १२० बार तक हो जाती है। शरीर का उत्ताप थर्मामिटर में १०३° से १०४° डिग्री तक हो जाता है। कोई २ तो १०७° डिग्री टेम्परेचर होजाने पर भी आराम होते देखे गये हैं।

रोगी का मुख मण्डल मलीन और चिन्ता युक्त होना गाल-लाल और काला होना तथा फटना। जीभ-सूखी और मैली क्षुधा मन्द, आहार में कष्ट, दस्त होना, अनिद्रा, उजियाला देखने से कष्ट बोध, पीड़ा-प्रकाश के दूसरे-तीसरे दिन मुख मण्डल पर छोटी २ फुंसियां होना, और फुफ्फुस का दूषित होना इस रोग का प्रधान लक्षण है।

अन्य मत से फुफ्फुस प्रदाह-

इसकी प्रथमावस्था में फेफड़े में रक्त-सञ्चय होकर शांति पूर्वक ज्वर होता है। शरीर का उत्ताप १०३ डिग्री तक, किसी २ को

अधिक भी होता है। श्वास प्रश्वास की गति प्रति मिनट में ३०-३५ और नाड़ी स्पन्दन संख्या १२०-१३० बार तक होती है। प्रथम ज्वर आरम्भ होकर थोड़ी२ खांसी होती है, फिर गाढ़ा २ कफ रक्त मिला हुआ निकलने लगता है। इस रोग मे "वक्षपरीक्षक यन्त्र" द्वारा फुफ्फुस की परीक्षा अवश्य करनी चाहिये। उसे इंग्लिश में स्टेथस्कोप Stethoscope कहते हैं। इस (स्टेथस्कोप) से परीक्षा की विधि का वर्णन आगे परीक्षण पद्धति में करेंगे।

• इस रोग में पहिले फुफ्फुस में शोथ होती है, फिर यह कड़े पड़ जाते हैं, उसके बाद सड़ने लगते हैं। इसमे शीत ज्वर, छाती ज्यादा गरम, मुंह और आंख लाल, सिर में दर्द, प्यास, जीभ मैली, क्षुधानाश, छातीमें मीठा२ दर्द, सूखी खांसी, कभी कफ अधिक व व्याधि बढ़ने पर कफ मे कुछ खून भी आने लगता है, श्वास में कष्ट, ल्हेसदार दुर्गन्ध युक्त, ये लक्षण होते हैं।

सरदी लगना, व ऋतु बदलना, अति परिश्रम, अति मैथुन, ज्वर मे शीत वस्तु खाना, कई भांति के ज्वर में कुपथ्य सेवन आदि कारणों से यह होता है। इसके अनेक लक्षण व मत हैं।

आयुर्वेदीय मत

निमोनिया की उत्पत्ति के 'विप्रकृष्ट' कारण

समाच्छादन हीनानां, दुर्बलानां विशेषतः ।
दीनानां दून चित्तानां शीत वर्षादि बाधनाद् ॥१॥

अभिवातात् क्वचित् पूतिगन्ध योगेन कुत्रचित् ।
क्वचिद्वा व्याधिनाऽनेन पीडितस्याऽति सङ्गमात् ॥ २ ॥
सर्वेष्वेवर्तुषु प्रायोवर्षासु शिशिरे मधौ ।
विशेषेण प्रजायेत ज्वरो जीवाणु सम्भवः ॥ ३ ॥

अर्थात्–आचार्य मोद्गल्य का कथन है कि–

१–नङ्गे शरीर रहना । २–विशेष दुर्बलता ।

३–शोकार्त । ४–शीत वर्षा से बाधित

५–फुफ्फुस पर किसी प्रकार की चोट लगना ।

६–दुर्गन्धियुक्त वायु का सेवन ।

७–सहवास अथवा किसी व्याधि से पीड़ित अधिक सहवास से वीर्यपात इत्यादि कारणों द्वारा ही वर्षा शिशिर और वसन्त ऋतुओं में—प्रकुपित श्वसनक ज्वर हो जाता है ।

८–कई तरह का ज्वर । ९–अधिक परिश्रम करना ।

१०–धूल कचरा आदि दूषित पदार्थों का श्वास के साथ फेफड़ों में जाना । ११–अति स्त्री प्रसङ्ग करना ।

१२–मौसम का बदलना या ऋतु परिवर्तन होना ।

१३–जीवन निर्वाह की कठिनता । १४–रात्रि जागरण ।

१५–दरिद्रता १६–वंशानुक्रमागत रोग पूर्ण शरीर ।

१७–मद्य का अत्यन्त उपयोग करना ।

१८–वक्षस्थल में आघात लगने से भी यह रोग होता है । आघात जन्य निमोनिया को (ट्रोमेटिक Traumatic

निमोनिया) कहते हैं। और स्वयं ही होने वाले निमोनिया को (डिरोपैथिक निमोनिया) कहते हैं, इस तरह निमोनिया के प्रधान २ भेद अंग्रेजी में माने गये हैं।

उत्पन्न होने की अवस्था—

यह रोग अधिकतर शीतकाल में ही बालक, वृद्ध, युवा, सब को होता है किंतु प्रथम १० वर्ष की अवस्था तक तथा २० वर्ष से ५० वर्ष तक की अवस्था में अधिक होता है।

वैज्ञानिकों का मत—

वैज्ञानिक लोग इस रोग की उत्पत्ति कीटाणु विशेष से मानते हैं जो फेफड़ों में अपना घर बना कर रहते हैं और वहीं वृद्धि को प्राप्त होते हैं। निमोनिया रोगोत्पादक विष-जन्तुओं को अंग्रेजी में (डिप्लोकोक्कस न्यूमोनियाई) कहते हैं।

तात्पर्य—

निमोनिया का हेतु प्रतिश्याय ही होता है। पहिले सर्दी ही लगती है। सर्दी लगने पर कुपथ्य करने से सर्दी बिगड़ कर ज्वरादि उपद्रव हो, छाती में दर्द व खांसी होने लगती है; जैसे—सर्दी लगने पर कफकारक द्रव्य सेवन करना, नहाना, ठण्डी हवा लगना, ओस में रहना, भीगे कपड़े बदन पर रखना, सर्द जमीन पर सोना, नङ्गे बदन रहना, दही मट्ठा अधिक खाना, फल खाकर जल पीना, शर्बत वगैरहः पीना, ऊख चूसना, घिया तुरई की तर-

कारी खाना, अथवा जुकाम होने के साथ अदक, चाय, काफी गरम मसाला, प्याज, लहसुन, हल्दी फांकना, सर्दी को हटाने के लिये गर्म वस्तुओं का अधिक सेवन करना—इत्यादि २ कारणों से नाक से पतला पानी जैसा कफ गिरता हुआ तुरन्त सूख जाता है। जिससे अर्द्धावभेद मस्तिष्क शोथ, शिरोग्रह वगैरह: उपद्रव उठ आते है जिनका आराम करना कठिक हो जाता है।

तथा गोबर मिट्टी से घर द्वार लीपने से बहुत देर तक ठंडे पानी मे रहने से (क्यों कि बहुत स्त्रियाँ को सर्दी लगने पर भी दिवाली जैसे त्यौहार पर लीपने पोतने की धुन सवार हो जाती है। अक्सर ऐसी स्त्रियों का निमोनियां होते देखा गया है) ज्यादा देर तक सर्दी होने पर शीत क्रिया करते रहने से सर्दी बढ़ कर फुफ्फुस में कफ का संचय होजाता है।

इन हेतुओं से कफ संचय होकर निमोनिया हो जाता है इसी लिये इन कुपथ्यों से बचना चाहिये, पथ्य पालन करना ही सबसे श्रेष्ठ चिकित्सा है।

सन्निकृष्ट कारण—

१—किसी दुर्गन्धित व उत्तेजक, गैस के हठात् फेफड़ों में प्रवेश करने से।

२—छाती में चोट लगने से।

३—वर्षा में खूब भीगने से।

४—गरम शरीर में एक दम सर्दी लग जाने से।

५-फेफड़ों से रक्त निकलने से।

६-रोगजन्तुओं के संचित होने से।

७-फेफड़ों में अधिक समय तक रक्त का जमाव होने। एवं-

८-रोग नाशनी शक्ति के नष्ट हो जाने से-शीघ्र निमोनिया रोग हो जाता है। जिन मनुष्यों को विप्रकृष्ट कारणों द्वारा रोगोत्पादक क्षेत्र बना दिया गया है उनको यह रोग शीघ्र ही उत्पन्न होकर काल कवल कर डालता है। कभी २ रोगों की प्रबल अवस्था में उपद्रव रूप से भी निमोनिया होना देखा गया है

निमोनिया का पूर्वरूप

पार्श्वार्तिः श्वास कासौ च क्वचित कम्पोऽवसन्नना।
ज्वरे श्वसनके प्रायः पूर्व रूपमिदं मतम ॥ १ ॥

अर्थात्-पार्श्व शूल, श्वास, कास, कम्प तथा मनोदेहावसादः इन लक्षणों द्वारा निमोनिया ज्वर का पूर्व रूप ज्ञात होता है।

तात्पर्य-उदासी; अग्निमांद्य, कमजोरी, कब्ज, अङ्गमर्द, जी मचलाना, पखवाड़ों में दर्द, छाती पर भार सा मालूम होना, खांसी, श्वास, कम्प, ज्वर, तन्द्रा, शिर दर्द, वमन, सर्दी आदि निमोनिया के पूर्व रूप हैं।

संप्राप्ति

संहत्या सृङ् मूलतः फुफ्फुसस्या
ऽसव्ये पार्श्वे सव्यतो वा द्वयोर्वा।

हन्युर्दोषा श्वासयंत्रं विषोत्थाः।

क्रुद्धास्तस्माच्छ्वासकष्टं ज्वरश्च ॥ १ ॥

अर्थात्–संचित रक्त दक्षिण अथवा वाम पार्श्व दोषों करके कुपित फुफ्फुस-विप सम्भूत होकर कष्टवत् श्वास और ज्वर को प्रगट करता है।

तात्पर्य–सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट कारणों से तीनों दोष कुपित होकर फेफड़ों में आये हुए रस और रक्त को दूषित कर देते हैं। जिससे रक्त और रस केशिकाओं और वायु कोषों में अवरुद्ध होकर घन होने लगते हैं, इससे फेफड़े भारी होने लगते हैं और कुछ ही समय के बाद उनमें पीप (पूय) उत्पन्न होजाती है। इस प्रकार दोष फेफड़ों को नष्ट कर डालने की चेष्टा करते हैं।

पुराने रोगियों को इस रोग का आरम्भ पिछले भाग से होता है, परन्तु नवीन रोगियों में रोग का आरम्भ दाहिने फेफड़े के नीचे भाग से होता है। कभी २ बायें फेफड़े के ऊपरी भाग से भी आरम्भ होता देखा गया है। तथा कई रोगियों के दोनों फुफ्फुस एक समय में भी रोग ग्रस्त देखने में आते हैं।

सामान्य रूपम्

लाक्षा रसाभं यः ष्ठीवेद् रक्तं श्वास ज्वरार्दित–

स्त्यान फुफ्फुस मूलस्य तस्य श्वसनको ज्वरः ॥ १ ॥

अर्थात्–लाखके रस के सदृश कफ मिश्रित रक्त मुख द्वार से निकले, श्वास और ज्वर का वेग हो। ये सम्पूर्ण उपद्रव प्रायः

फुफ्फुस ही से उत्पन्न होते हैं। इसी से कोई २ आयुर्वेदाचार्य इस ज्वर को श्वसनक ज्वर निर्णय कर चुके है।

तात्पर्य—पहिले फेफड़ों में सूजन आजाती है और वे कड़े होजाते हैं तथा सड़ने लगते हैं। आरम्भ में जाड़े का बुखार आता है, छाती बहुत गर्म होजाती है, मुंह और नेत्र लाल हो जाते है, सिर में दर्द होता है, प्यास बहुत लगती है, जीभ मैली रहती है, क्षुधा नाश, छाती में मन्दा-मन्दा दर्द होता है। खांसी सूखी चलती है, कभी २ कफ भी आता है, बीमारी के बढ़ जाने पर मुख में खून गिरने लगता है, श्वास कष्ट से आता है, थूक लहूसदार, चिपचिपा और बदबूदार होता है।

लक्षण और आयुर्वेद का मत

इस सान्निपातिक व्याधि-विशेष को आयुर्वेद में "कर्कोटक सन्निपात" करके लिखा है। यह हीन पित्त, मध्य वात, कफाधिक्य से होता है। यथाः—

मध्य हीन प्रवृद्धैस्तु वात पित्त कफैस्त्रयः।
तेन रोगास्त एवोक्ता यथा दोष बलाश्रयाः ॥ १ ॥

अन्तर्दाहो विशेषोऽत्र न च वक्तुं स शक्यते।
रक्तमालक्तकेनैव लक्ष्यते मुखमंडलम् ॥ २ ॥

पित्तेनाकर्षितः श्लेष्मा हृदयान्न प्रसिच्यते।
इषुणेवा हतं पार्श्वं तुद्यते खन्यते हृदि ॥ ३ ॥

प्रमीलकः श्वास हिक्का वर्द्धन्ते च दिने दिने।
जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूकैरिवावृतः ॥४॥

विसर्ग नाभिजानाति बूजेच्चापि कपोतवत ।
अतीव श्लेष्मणा पूर्णः शुष्क वक्त्रोष्ठ तालुकः ॥५

तन्द्रा निद्रातियोगार्तो हतवाग्निहतद्युतिः ।
न रतिं लभते नित्यं विपरीतानि चेच्छति ॥६॥

आयम्यतेच बहुशो रक्तंष्ठीवति चाल्पशः ।
एष कर्कटको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥७॥
(मा० नि० श्लोक ७६ से ८२ तक)

अर्थात्—मध्यवात, हीनपित्त, अधिक कफ के सन्निपात में तत्तद् दोषों के बलानुसार, कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होते हैं। तथा-विशेष करके-शरीर के भीतर जलन, बोलने मे असमर्थता, मुख मंडल जैसे लाल (पतङ्ग से) रङ्ग दिया हो (मुख और गाल लाल हों)। पित्त से खींचा हुआ कफ हृदय से बाहर नहीं निकले, पसलियों मे तीर के वेधन सरीखी पीड़ा हो, छाती और हृदय मे खोदने जैसी पीड़ा हो।

आंख बन्द, पलक भारी, श्वास, खांसी, हिचकियों का होना यानी प्रति दिन इनका बढ़ना जिह्वा दग्ध रूखी सूखी मैली गाय की जिह्वा की तरह, मानो जीभ मे थूक नाम मात्र को भी नहीं है अर्थात सूखी जान पड़ती है, तथा कालापन लिये श्वेत होना, कण्ठ मे कांटे से हो जांय, मानो किसी ने धान का भूसा भर दिया हो।

बेहोशी में मल मूत्र चारपाई पर होजाय, कफ की आवाज़ ज्ञात हो, कबूतर की आवाज़ की भांति घुटरे, मुख, होठ, तालू सूख जांय, होंठ पर पपड़ी पड़ जाय, तन्द्रा निन्द्रा (मोह) अधिक हो। वाणी और कान्ति नष्ट हो जाय। बेचैनी हो विपरीत पदार्थों की इच्छा हो। वारम्वार खांसने मे किंचित् खून मिला कफ थूकना, कफ का ल्हेसदार तन्तुवत् होना—ये सब लक्षण "कर्कोटक सन्निपात,, के हैं। इसी को डाक्टर लोग निमोनिया कहते हैं।

डाक्टरों ने दोषों की प्रधानता से अन्य सन्निपातों को भी निमोनिया के अन्तर्गत माना है। जैसे—हीन पित्त, मध्यकफ, वाताधिक्य वाला क्रकच सन्निपात' (ब्रौंको न्यूमोनिया) नाम से लिखा है उसको भी निमोनिया कहते हैं। अर्थात् यह भी निमोनिया की एक क़िस्म है (जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर आये हैं) और हीनवात, मध्यपित्त, कफाधिक्य सन्निपात को भी निमोनिया ही मानते हैं। जिसको आयुर्वेद में "वैदारिक सन्निपात" करके लिखा है।

नोट—इस प्रकार निमोनिया के "डबल", "सिंगिल" और "ब्रौंको" आदि कई प्रकार के भेद हैं। आयुर्वेदरीत्यानुसार इसे ३ श्रेणी में विभक्त करते हैं:—

१—मध्यवात, हीनपित्त, अधिक कफ, यानी कफप्रधान निमोनिया। अर्थात्—कर्कोटक सन्निपात।

२—अधिक वात, मध्य कफ, हीनपित्त, यानी वात प्रधान निमोनिया अर्थात्—' क्रचक सन्निपात"।

३–हीनवात, मध्यपित्त, कफाधिक्य वाला निमोनिया।
अर्थात्–"वैदारिक सन्निपात,,।

इनमें कर्कोटक सन्निपात का वर्णन हम अभी ऊपर कर आये हैं। शेष दो इस प्रकार हैं।

२--क्रकच सन्निपाता वाला निमोनिया

किसी किसी निमोनिया में वायुदोष अधिक होता है उस में उपरोक्त निमोनिया (कर्कोटक सन्निपात) के लक्षणों के होने के सिवाय वायु की प्रधानता से नीचे लिखे हुए विशेष लक्षण भी पाये जांय तो उसे वातप्रधान निमोनिया समझना चाहिये। यथाः-

प्रवृद्ध हीन मध्यैस्तु वात पित्त कफैश्च यः।
ते न रोगास्त एत्रोक्ता यथा दोप बलाश्रयाः ॥१॥
प्रलापायास सम्मोहाः कम्प मूर्च्छाऽरति भ्रमाः।
मन्यास्तम्भेन मृत्युः स्यात्तत्राप्येतद्विशेपतः ॥२॥
भिषग्भिः सन्निपातोऽयंक्रकचः संप्रकीर्तितः ॥३॥

(माधव नि० श्लो० ७३, ७४, ७५,)

अर्थात्–अधिक वात, मध्य कफ, हीन पित्त सन्निपात में तत्तद्दोषों के बलानुसार कम्प, दाह, भारीपन आदि लक्षण होते हैं तथा विशेष करके व्यर्थ बकना, परिश्रम बिना किये ही थकावट मालुम होना, मोह, कम्प, मूर्च्छा, बेचैनी, भ्रम, गरदन का जकड़ना आदि लक्षण होते हैं।

या यों समझिये कि "क्रकच" (वाताधिक्य) सन्निपात जिस के लक्षण अभी लिखे गये हैं निमोनिया (कर्कोटक सन्निपात) में मिल जाय, तो वाताधिक्य निमोनिया जानना चाहिये। इसकी चिकित्सा भी-वात को शान्त करते हुए निमोनिया की चिकित्सा करनी चाहिए। क्योंकि यह रोग नहीं "रोगशंकर" है। दोनों सन्नि-पात एक रोगी को एक साथ होजावें, तो रोग और मृत्यु में कोई भेद नहीं है। ऐसे ही कठिन रोग से व्याप्त रोगी को जो वैद्य उबारते है अर्थात् जीवन दान देते हैं वे ही तो वैद्य हैं। ऐसे २ स्थलों मे ही उन तीक्ष्ण बुद्धि विशारद वैद्यों की आयुर्वेद ने प्रशंसा की है।

अब इसका एक भेद और है उसका भी वर्णन करते हैं:-

३ वैदारिक सन्निपात वाला निमोनिया

यह हीन वात, मध्यपित्त, कफाधिक्य, वैदारिक सन्निपात नामक महा कठिन रोग है। इसके लक्षण मिलते हुए निमोनिया को प्रायः असाध्य ही जानना चाहिए।

हीन मध्य प्रवृद्धैस्तु वात पित्त कफैश्चयः।
तेन रोगास्त एवोक्ता यथादोष बलाश्रयाः ॥१॥

अल्प शूलं कटी तोदो मध्ये दाहो रुजाभ्रमः।
भृशं क्लमः शिरोवस्ति मन्याहृदय वाग्रुजः।॥२॥

प्रमीलकः कास श्वास हिक्का जाड्यं विसंज्ञता।
प्रथमोत्पन्नमेतंतु साधयन्ति कदाचन ॥३॥

एतस्मिन् संवृवृत्ते तु कर्णमूले सुदारुणः।
पिडिका जायते जन्तोर्यया कृच्छ्रेण जीवति ॥ ४ ॥

स वैदारिक संज्ञोऽयं सन्निपातः सुदारुणः।
त्रिरात्रात्परमेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ५ ॥
(मा० नि० श्लो० ८३, ८४, ८५, ८६, ८७)

अर्थात्–हीनवात, मध्यपित्त, कफाधिक्य वैदारिक सन्निपात में उन्हीं ३ दोषों के बलानुसार कम्प, दाह और भारीपन आदि लक्षण होते हैं। तथा विशेषकर यह लक्षण होते हैं:– जैसे–अल्पशूल, कमर में तोड़ने सरीखी पीड़ा, छाती में दाह और पीड़ा, भ्रांति, अत्यन्त ग्लानि, मस्तिष्क में अत्यन्त पीड़ा, मूत्राशय (मसाना, ब्लाडर, पेड़ू) नाड़ी (मन्या, गरदन) हृदय और वाणी मे पीड़ा हो। आंखें मिंची जायं, श्वास, खांसी, हिचकी, जड़ता और अत्यन्त बेहोशी होती है।

इस सन्निपात के उत्पन्न होते ही यदि चिकित्सा न की जाय तो रोगी का बचना कठिन हो जाता है। आरम्भ में इसकी उत्तम चिकित्सा करने से रोगी को दैववश आराम हो जाय तो भले ही हो जाय नहीं तो इसे असाध्य ही जानना चाहिये।

यदि इस सन्निपात में कर्ण मूल में शोथ हो जाय तो बिल्कुल ही असाध्य समझना, किम्वा ३ रात्रि के व्यतीत होने पर चिकित्सा भी निष्फल जानना चाहिये।

शंका-समाधान

शङ्का—अब यहां पर कोई यह शङ्का करेंगे कि इन तीन—ऋचक, कर्कोटक और वैदारिक सन्निपातों का पृथक २ वर्णन आयुर्वेद में किया है, इन तीनों की चिकित्सा का भी विशेष रूप से अलग २ वर्णन ग्रंथान्तरों मे पाया जाता है तो फिर आपने इन तीनों को एक निमोनिया में क्यों घसीट डाला ?

समाधान--प्रिय वैद्य बन्धुओ ! इसका उत्तर इस प्रकार है कि आयुर्वेद में तो पृथक पृथक निदान और चिकित्सा का वर्णन है परन्तु डाक्टर लोग इन तीनों के लक्षण एक साथ लिखते हुए तथा कुछ २ भेद करते हुए निमोनियां का ही भेद मानते हैं और इस प्रकार उनका मानना भी ठीक मालूम पड़ता है कारण कि ये तीनों कफोल्वण सन्निपात की अंशांश कल्पना के ही भेद मात्र हैं। इन तीनों सन्निपातों में और तो कुछ विशेष भेद नहीं है, केवल दोषों का ही कम-बेश भेद मात्र है।

जिसको निमोनिया कहते हैं वह तो 'कर्कोटक सन्निपात' है ही, किन्तु जिसको हम लोग सन्निपात कहते है उसको डाक्टर लोग "टाइफाइडफीवर" कहते है। तथा 'टाइफाइड'(Typhoid) और निमोनिया (pneumonia) इन दोनों रोगों को अलग मानते हैं। 'टाइफाइड के बेसिलउ और 'निमोनिया के कोक्कस, पृथक पृथक है ऐसा कहते है।

जो हो, उनकी पद्धति (Theory) कीटाणु लेकर है—और हमारी दोषों को लेकर है। परन्तु विचार करने से ज्ञात

होता है कि सन्निपात ज्वर का हेतु मिथ्या आहार, विहार आदि तो अवश्य ही हैं, परन्तु उत्कट विरुद्ध क्रिया करने से भी सन्निपात हो जाता है। ऐसे ज्वरों में-आंत से सम्बन्ध रखने वाले ज्वरों को डाक्टर गण टाइफाइड (Typhoid) अर्थात् सन्निपात ज्वर कहते हैं। निमोनिया फुफ्फुस संबंधी ज्वर है इस लिये इसको टाइफाइड न कहकर निमोनिया (Pneumonia) कहते है।

दूसरी शंका-यह करेंगे कि फुफ्फुसीय ज्वर (निमोनिया) को आयुर्वेद में फुफ्फुस--ज्वर कहकर क्यों नहीं लिखा।

समाधान-प्रेमी वैद्यगणो ! यह स्थल विचारणीय है, कि आयुर्वेद में फुफ्फुस ज्वर (निमोनिया) मस्तिष्क-ज्वर (Brain Fever)इत्यादि अंग विशेष के अनुसार ज्वरों के नाम नहीं लिखे किन्तु प्रकारान्तर से सब कुछ लिखा है। जैसे:—

मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्यकोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ (माधवः)

अब ज़रा इस ज्वर की संप्राप्ति की ओर ध्यान देकर विचारे कि मिथ्या आहार और विहार के करने से कोष्ठस्थित अग्नि की ऊष्मा बाहर होकर ज्वर नाम धारण करती है। तो अब यहां यह समझना है कि कोष्ठ किसे कहते है। वाग्भट्ट जी ने कहा है कि:—

"अन्नकोष्ठो महास्रोत आम पक्काशयाश्रयः।,, (इति वाग्भट्ट)
कोष्ठं पुनरुच्यते महास्रोतः शरीर मध्यं महानिम्नमाम पक्काशयश्चेति पर्याय शब्दैः। (इति चरकः)

और भी देखिये:--

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च।
हृदुंडकः फुफ्फुसश्च कोष्ट इत्यभिधियते ॥१॥

आमाशय (Stomach स्टमक)
अग्न्याशय (Pancreas पैंक्रियस)
पक्वाशय (Dudenum ड्योडीनम)
मूत्राशय (मूत्रपिंड और वस्ति Kidney & Bladder)
रक्ताशय (यकृत, प्लीहा Liver लिवर, Spleen स्प्लीन)
हृदय (Heart हार्ट)
उंडुक (पौटलाक रेक्टम Rectum के ऊपर)
--ये कोष्ठ है।

पुनश्च महर्षि अत्रिनन्दन कोष्ठ के विषय में लिखते हैं कि—

"पञ्चदश कोष्ठाङ्गानि तद्यथा नाभिश्च हृदयश्च क्लोमं च यकृच्च प्लीहाच वृक्कौ च वस्तिश्च पुरीषाधानञ्चामाशयश्चेति पक्वाशयश्चोत्तर गुदंचाधरगुदंच क्षुद्रान्त्रंच स्थूलांत्रञ्च वयावहनं चेति॥

(शा० अ० ७)

इस १५ स्थानों का नाम कोष्ठ हुआ और इन १५ स्थानों मे अग्नि का निवास अर्थात् स्वाभाविक ऊष्मा (Heat) जो है वह रस में मिल स्रोतों को रोक कर चर्म को उष्ण करती है तब ज्वर कहलाती है।

इन ऊष्मा (गर्मी) का नाप ही थर्मामीटर में डिग्री कहलाता है। चर्म की स्वाभाविक गर्मी (Normal Temperature) थर्मामीटर मे ९८॥ डिग्री रहनी चाहिये।

किम्वा इस तरह समझें कि अभ्यंतर अङ्ग विशेष जिनको कोष्ठ मे गिनती करा चुके हैं, उनकी स्वाभाविक ऊष्मा रस में आकर चर्म की ऊष्मा में मिल जाती है, तव चर्म की ऊष्मा (Temperature) अधिक हो जाती है। इसे ही ज्वर कहते हैं।

स्पष्टीकरण—

अब यहां विचार करें कि जो कोष्ठ जिस २ दोष की प्रधानता से निर्मित है, उसी २ के अनुसार, दोषानुकूल ज्वर के लक्षण होते हैं। इसलिये आयुर्वेद में पृथक २ अङ्ग विशेष का ज्वर नहीं लिखा है। जैसे—

यदि किसी को कफ ज्वर हुआ तो इसका सम्बन्ध कफाशय से अवश्य होगा, कफाशय से सम्बन्ध होने पर कफाशय-जैसे दोनों फुफ्फुस आमाशयादि कफ प्रधान स्थल निश्चय विकृत होंगे। उन स्थानों के विकृत होने से उन २ स्थानों के कार्य में अवश्य बाधा होगी अर्थात् उन स्थानों के कार्य अवश्य विकृत रूप से होंगे। फुफ्फुस श्वास यन्त्र है, इसमे कफ ही की प्रधानता रहती है। इसमें का सञ्चय और प्रसार हो तो वह वायु कोष को आच्छादित व पूरित पर श्वास कष्ट बढ़ाता है कारण कि—

श्वास कोष में जब कफ भर जायगा तो वायु कहां रहेगी और रक्त को किस तरह से शुद्ध करेगी।

यही कारण है कि—निमोनिया में श्वास कष्ट अधिक हो जाता है, और श्वास की गति तीव्र किंतु ओछी हो जाती है, जिसके

कारण रक्त शुद्ध नहीं होने पाता। रक्त शुद्ध न होने के कारण अर्थात् रक्त को शुद्ध वायु (औक्सीजन–Oxygen) न मिलने के कारण आभ्यंतरिक दूषित वायु (कारबनगैस–Carbon Gas) बाहर न निकलने से, मुखमण्डल, ओष्ठ आदि नीले वर्ण के हो जाते हैं। जब दूषित वायु (Carbon Gas) आभ्यन्तर से बाहर न निकलने पावे और शुद्ध वायु भीतर न जा सके, तब ही तो प्राण वायु के ऊपर घोर सङ्कट होता है तभी रोगी बेचैन हो अपने प्राण त्यागता है, इसीलिये यह रोग भयङ्कर कहलाता है।

जब वायु–कोष में कफ सञ्चय होने लगता है, तब चतुर चिकित्सक कफ के सञ्चय को हितोपचार से रोकते हैं। यदि अधिक सञ्चित हो गया हो तब प्रमाथि द्रव्यों से कफ को पतला कर बाहर निकालना चाहिये। इस प्रकार कफ ज्वर में श्वास का क्रम खराब देखे तो समझ जाय कि यह कफज्वर 'फुफ्फुस सम्बन्धी' (Pneumonic न्यूमोनिक) है तथा इस ज्वर में वमन; अन्न न पचना, पेट भारी, क्षुधामन्द आमगन्धी, उद्गार आदि दूषित आमाशय के लक्षण मिलें तो समझलें कि 'यह ज्वर आमाशय सम्बन्धी' है। इसी प्रकार अन्य स्थानों को भी जान लेना चाहिये।

पित्त प्रधान कोष्ठ में पित्त दूषित हो, उसके कार्य में बाधा पहुंचती है और बाधा के कारण पित्त के प्रधान लक्षण पीतनेत्रता आदि प्रकट होते हैं। इसी तरह वायु कोप भी जानना।

निमोनिया में त्रिदोष अंशांश भेद से अवश्य ही कुपित होते हैं। बुद्धिमान वैद्य को विचार करना चाहिये कि किस दोष

के लक्षण अधिक हैं, जिस दोष के लक्षण अधिक हों, उस दोष की प्रधानता समझ उस दोष के स्थान का विचार करना। जैसे-वायु का प्रधान स्थान "पुरीपान्त्र" है और अन्य स्थान भी गौण रूप से हैं वे गौण रूप के स्थान और उसमें व्याप्त वायु इस प्रकार है—

स्नायु केन्द्र-चेतनाधिष्ठान—

यह मस्तिष्क आवरण के ऊपर बिछा हुआ जाल के सदृश मांसरज्जु की पतली २, कुछ २ मोटी सुतली के समान डोरियों का केन्द्र है, जो कि पृष्ठवंश (मेरुदण्ड) से बंधी हुई हैं, और समस्त शरीर में फैली हुई बाह्याभ्यन्तर अवयवों को आकुञ्चन प्रसारण शक्ति द्वारा; चेतना देकर कार्य कराती हैं। समस्त शरीर में फैली हुई इन स्नायु समूहों का नाम ही नाड़ी मण्डल है। जिसे अंग्रेजी में "नरवस सिस्टम Nervous System", कहते हैं। इस स्नायु मण्डल द्वारा ही पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रियों के समस्त चेतनायुक्त व्यापार हुआ करते हैं।

इस स्नायुमण्डल की स्वाभाविक शक्ति इस प्रकार है। सङ्कोचन, प्रसारण, स्फुरण, अवगुण्ठन, गति, बन्धन, कम्प, स्तब्ध आदि। जब यह स्नायु मण्डल अपने २ स्थान पर स्थित हुआ अनुकूल व्यापार करता है, तब शरीर को निरोग रखता है और इस स्नायुमण्डल के विकृत होने से समस्त शरीर का व्यापार प्रतिकूल होजाता है। जैसे अङ्ग-भङ्ग, भ्रंश, आक्षेप, तोद, शूल, कम्प, अवगुण्ठन, स्तब्ध तथा शब्द स्पर्श आदि शक्तियां बिगड़ जाती हैं।

प्राणवायु का निवास और कर्म

अथवा इस तरह स्पष्ट समझें, कि प्राणवायु छाती में रहती है। इसका मतलब यह है कि श्वासोच्छ्वास की गति उसी स्नायु मण्डल की आकुञ्चन, प्रसारण शक्ति द्वारा ही हुआ करती है। क्योंकि आकुञ्चन, प्रसारण शक्ति न होती तो लोहार की धौंकनी यन्त्र की तरह फुफ्फुस उठता, फूलता, बैठता सिकुड़ता कैसे ? और वायु कोष में वायु कौन भरता तथा उठने दबने का काम कौन करता ?

आक्सीजन (प्राणप्रद वायु) अन्दर कैसे पहुंचता और अन्दर का कारबनगैस (दूषित वायु) कैसे बाहर निकलता ? यह क्रिया ही मनुष्य मात्र को जीवन अवस्था में रखती है। फुफ्फुस को वायु का खजाना समझना चाहिये। वायु के कोष से कफ के संचित हो जाने से श्वासोच्छ्वास की गति बिगड़ जाती है। यही कारण है कि निमोनिया में श्वास-चक्र बिगड़ जाता है और उस श्वास चक्र के बिगड़ने से बाहर की शुद्ध वायु पूर्ण रूप से अभ्यन्तर नहीं पहुंच सकती और अभ्यन्तर की सम्पूर्ण दूषित वायु बाहर नहीं निकल सकती, जिससे रोगी व्यग्र हो जाता है।

उदान वायु का निवास और कर्म

यह कंठ में निवास करती है। छाती के ऊपर मस्तिष्क पर्यन्त जितनी क्रियायें होती हैं। जैसे—शब्द सुनना, वाक्य बोलना, रूप देखना, गंध लेना, षट् रस व्यंजनों का स्वाद लेना, वमन द्वारा

खाये हुये पदार्थ का बाहर निकलना, उद्गार (डकार) का होना इत्यादि क्रियायें उदान वायु के आधीन हैं ये भी उसी प्रकार स्नायु मंडल की आकुंचन-प्रसारण शक्ति द्वारा ही सम्पादित होती रहती है।

समान वायुका निवास और कर्म—

यह वायु नाभि में रहती है और उसी स्नायु मंडल के आकुंचन-प्रसारणकी शक्ति द्वारा ही पाचनादि क्रियाये करती रहती हैं।

अपान वायुका निवास और कर्म—

यह वायु गुदा में रहती है और उसी स्नायु मंडल द्वारा मल मूत्र, अधोवायु, रज, शुक्र, गर्भ इनका ग्रहण और त्याग किया करती है। अथवा यों समझिये कि स्नायु मंडल की शक्ति से आंतें जलौकावत संकुचित और प्रसारित होकर मल का त्याग करती है। और उसी शक्ति के द्वारा अधोवायु भी जलतरंगवत् बाहर निकल जाती है। फिर भी उसी शक्ति द्वारा ही मूत्रपिंड (Kidneys) द्वारा मूत्राशय में मूत्र संचित हो, वस्ति द्वारा बाहर निकल जाया करता है। उसी तरह वीर्य कोष से वीर्य बाहर होने के समय मूत्रमार्ग द्वारा बाहर निकला करता है। इसी तरह रज और गर्भ भी गर्भाशय से विसर्जन हुआ करता है।

व्यान वायु का निवास और कर्म-

यह समस्त शरीरस्थ चर्मेन्द्रिय से बंधन रखने वाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्नायु द्वारा आघात, प्रत्याघात, शीतोष्ण, सुख,

व्यान

दुःखादि, चेष्टा का बोध करती है। जैसे अकस्मात पैर में कांटा लगने से स्नायु मण्डल टेलीग्राफवत कम्पित हो. अपने केन्द्र मस्तिष्क को शीघ्र सूचित कर दुःख का बोध कराती है।

कहने का अभिप्राय यह है कि वायु कोष (फुफ्फुस) में प्रतिश्याय (सर्दी, जुकाम) होने के कारण कफ संचित हो जाता है, तब उस कफ का निकलना कठिन हो जाता है। फिर वह कफ फुफ्फुस में शोथ प्रदाह उत्पन्न करके उसे विकृत बना देता है. इसी से इस निमोनिया ज्वर को "फुफ्फुस ज्वर" कहते है। फुफ्फुस विकृत होजाता है। तब श्वास की गति क्रमविरुद्ध हो जाती है। श्वास की गति क्रमविरुद्ध होने से अन्यान्य स्थान जैसे-- पाकस्थली व अंत्र मडल का कार्य क्रमविरुद्ध हो जाता है। यही कारण है कि निमोनिया मे किसी २ को अग्निमांद्य व अतिसारादि उपद्रव हो जाते है जिससे बड़े २ चिकित्सकों को टाइफाइड का भ्रम हो जाता है।

टाइफाइड् ज्वर का सम्बन्ध अन्त्र मण्डल से है और निमोनिया का सम्बन्ध फुफ्फुस से है। इसीलिये सद्वैद्य को विचार करना चाहिये कि प्रथम-सर्दी, खांसी, सीने में दर्द और ज्वर हो तो इसे निमोनिया ज्वर समझे और अतिसारादि इसके उपद्रव समझना चाहिये।

यदि प्रथम ज्वर होने के साथ या ज्वर के पहिले से ही पेट बिगड़ अतिसारादि करे और उसके पीछे कफादिक का उपद्रव हो तो इसे टाइफाइड जानें। न्यूमोनिया में सर्दी, ज्वर, फेफड़े मे

प्रदाह, दुर्बलता व शीतावस्था बहुत समय तक बनी रहती है, फेफड़ों के प्रदाह की अधिकता से श्वास प्रश्वासों की संख्या बढ़ कर १ मिनट मे ५०-६० वा इससे भी अधिक हो जाती है। श्वास कष्ट विशेष बढ़ जाता है, जिससे रोगी सो नही सकता और न किसी से साफ शब्दों मे अपने मानसिक भाव प्रगट कर सकता है। श्वास लेते समय नासापुट का उत्थान और निकलते समय शीघ्र पतन होता है। प्रश्वास मे निकली हुई वायु प्रायः ठण्डी होती है। कहीं २ नाड़ी की गति व श्वास प्रश्वासों मे अन्तर होता है, परन्तु यह बात सब रोगियों मे नहीं देखी जाती। कंठ कूजन, मुख और ओष्ठों का नीला होना, अरुचि, प्रलाप और बेचैनी आदि इस रोग के प्रधान कारण हैं।

इस रोग का अन्त दारुण मोक्ष से सप्तम, नवम, एकादश दिवस मे होता है। दारुण मोक्ष की अवस्था मे रोगी की दशा शोचनीय हो जाने के बाद कुछ ही समय पीछे शुभ लक्षण प्रकट होते है। १० या १२ घंटे में शारीरिक ऊष्मा अपनी स्वाभाविक मात्रा मे आजाती है। उस समय पसीना और बेहोशी बहुत होती है, श्वास अधिक आता है, नाक से रक्त वा किसी २ रोगी को दस्त भी होते देखे गए है। इस अवस्था मे या तो अत्यन्त दुर्बलता वा हृदय की कमजोरी होकर रोगी का अन्त हो जाता है या वह हमेशा के लिये निरोग हो जाता है। यदि यह अवस्था न आये, तो रोगी को पुनः कोई अन्य रोग होने की सम्भावना बनी रहती है।

परीक्षण पद्धति—

ज्वर

ज्वर सर्वाङ्ग मे होता है और उसका उत्ताप अति शीघ्र होता है। आधुनिक ताप-मापक यंत्र द्वारा (थर्मामीटर) ज्वर की परीक्षा करने पर उसका संताप प्रायः १०२° से १०५° तक रहता है। हमने किसी किसी रोगी को १०७° से १०८° डिग्री तक बढ़ा हुआ ज्वर पाया है। किसी २ रोगी को ज्वर सदा बना ही रहता है और किसी २ को प्रातः नहीं रहता, तथा सभी रोगियों को मध्याह्न मे ज्वर बढ़ जाता है।

खांसी—

विशेष कष्ट दायक मालूम होती है और थोड़ा २ कफ निकलता है। खांसी के समय कांस्य पात्र वत शब्द होता है। खांसी के साथ यदि शीघ्र कफ आने लगे तो समझना चाहिये कि रोग नष्ट होने में देरी न होगी। परन्तु यदि कफ न आता हो वा सूखी खांसी हो तो समझना चाहिये कि रोग भयानक है।

कफ-झागदार नहीं होता, वह गाढ़ा गोंद के समान चिपचिपा होता है। रंग मे-लोह किट्ट के समान कुछ लाल व अनेक रंग का होता है। कफ मे रक्त, निमोनियां-रोगोत्पादक विष जन्तु (डिप्लोकोक्कस न्यूमोनाई) वसा, पूय एवं अनेक प्रकार के पदार्थ मिले रहते है। रोगी दुर्बलता के कारण कफ को नहीं निकाल सकता इसलिये वस्त्र डाल कर कफ खींचकर निकालना पड़ता है।

पार्श्व वेदना यानी फुफ्फुस परीक्षा -

पार्श्व वेदना ही इस रोग का मुख्य लक्षण है। यह वेदना दांये व बांये स्तन के पास होती है। एक पार्श्व में रोग होने से एक तरफ और दोनों पार्श्व में होने से दोनों तरफ होती हैं। कभी पीठ में और कभी वक्षस्थल में भी यह वेदना मालूम होती है।

निमोनिया में फुफ्फुस की ३ अवस्थायें होती हैं—

१-रक्तसंचयावस्था। २-स्रावावस्था। ३-पूयोत्पत्ति अवस्था।

१-रक्त संचयावस्था:—इस अवस्था में वायु कोषों एवं शुद्ध वायु नलिकाओं में प्रवाह होने लगता है। फेफड़ों का रंग लाल हो जाता है और उसमें नीलिमा की लहरसी दिखाई देती है। तौल में पहिले से बहुत बढ़ जाते हैं। उनको काटने से खंडों में खून और झाग मिली रस्सें निकलती हैं। यह अवस्था १ से ३ दिन तक रहती है।

२-स्रावावस्था-इस अवस्था में फेफड़ों का रंग साफ गुलाबी दिखाई देता है। इसमें की धमनी और शिराओं में शोथ वा रक्त की अधिकता होने से स्राव होने लगता है। ये यकृत के समान कठिन हो जाते हैं, और यकृत के समान कठिन अंश वायु से शून्य होते हैं। इस अवस्था में वायुकोष नष्ट हो जाते हैं, इस लिये वह दिखाई नहीं देते। फेफड़ों को काटने से उनमें कोमल दाने दिखाई देते है। यह अवस्था ३ से ७ दिन तक रहती है।

३-पूयोत्पत्ति अवस्था-इस अवस्था में फेफड़ों का रंग भूरा हो जाता है और वह यकृत के समान ही रहते है। इस दशा में पूय (पीप) बहुत होता है, इसलिये इसको पूयोत्पत्ति अवस्था कहते हैं। फेफड़ों को काटने से उनमें धूसर रंग का दुर्गन्धित पीप निकलता है और इनको जल में डालने से ये डूब जाते है। कभी कभी फेफड़ों में फोड़े और व्रण हो जाते हैं। कई रोगियों को इसी अवस्था में जीर्ण फुफ्फुस प्रदाह वा राजयक्ष्मा हो जाती है। यह अवस्था ७ दिन से ३ सप्ताह तक रहती है।

नाड़ी परीक्षा-

नाड़ी की गति अनियमित होती है। रोग की वृद्धि वा न्यूनता होने पर उसमें अन्तर पड़ता रहता है। रोग की प्रथमावस्था में वह द्रुतगति युक्त होती है और रोग की वृद्धि के साथ वह द्रुतता और भी बढ़ती जाती है। साधारणतया १ मिनट में इसकी गति संख्या ९० से १३० तक रहती है और कभी २ बढ़ कर १६० तक भी हो जाती है। ज्वर के मन्द होने पर वह मन्द हो जाती है, रोग के बीच में यदि अकस्मात् नाड़ी मन्द हो जावे तथा स्वेद और प्रलाप बढ़ जावे तो प्राणों का संशय होजाता है।

श्वास परीक्षा-

श्वास लेने में अधिक कष्ट होता है। ज्यों २ रोग बढ़ता जाता है, त्यों २ विशेष लक्षण उत्पन्न होते जाते हैं। फिर पीछे से पीड़ा अल्प हो जाती है, किन्तु अवरुद्धता बढ़

जाती है। श्वास और नाड़ियों में अन्तर आ जाता है । श्वास से नाड़ी चौगुनी की बजाय तिगुनी, दूनी ही रह जाती है । श्वास संख्या १ मिनट मे ३० से ७० तक हो जाती है ।

मुख परीक्षा-

मुख का वर्ण बिल्कुल लाल हो जाता है, और मुख पर सूखापन भी आ जाता है । सरसों सम पिडिकायें निकल आती है । वाणी वा कांति नष्ट हो जाती है, मस्तक पर स्वेद की चिपचिपा-हट ज्ञात होती है । सर में अधिक दर्द होता है ।

जिह्वा परीक्षा

जिह्वा दग्ध रूखी, सूखी, मैली, गाय की जिह्वा की तरह मानों जीभ में थूक नाम मात्र को भी नहीं हो, यानी बिल्कुल सूखी जान पड़ती है, तथा रंग भूरा या कालापन लिये श्वेत होना और कंठ में कांटे से हो जाते हैं ।

नेत्र परीक्षा

तन्द्रा; निद्रा अधिक हो जाती है । नेत्र लाल हो जाते है, नेत्रों की पुतलियां फैल जाती हैं और रात्रि मे निद्रा नहीं आती ।

मूत्र परीक्षा

मूत्र कम उतरता है, तथा पेशाब के साथ खून की झलक आती है और उसके साथ धातु भी मिली रहती है ।

थर्मामेटर से परीक्षा

अभ्यन्तर अङ्ग विशेष जिनको कोष्ठ प्रकरण में वर्णन कर आये है उनकी स्वाभाविक ऊष्मा; रस मे आकर, चर्म की ऊष्मा में मिल जाती है, तब चर्म की ऊष्मा अधिक हो जाती है, इसे ही ज्वर कहते हैं और यही ऊष्मा (गर्मी) थर्मामीटर में डिग्री कहलाती है। चर्म की स्वाभाविक गर्मी थर्मामीटर में ९८॥' डिग्री रहनी चाहिये। इसकी कमी बेशी में शरीर (चर्म) की ऊष्मा अर्थात् ज्वर की कमीवेशी जानी जाती है।

स्टेथिस्कोप (STETHOSCOPE) द्वारा परीक्षा-

१-प्रथमावस्था-निमोनिया की प्रारंभिक दशा में फुफ्फुस से कठिन शब्द सुनाई देता हैं, फिर बाल घिसने के सदृश आवाज़ आती है।

२-द्वितीयावस्था-निमोनियां की दूसरी दशा में जब फुफ्फुस कठिन हो जाता है, तब कोई शब्द सुनाई नहीं देता।

३ तृतीयावस्था-निमोनियां की तृतीयावस्था मे जब पीप पड़ जाती है तो टप् टप् शब्द सुनाई देने लगता है।

निमोनिया और टाइफाइड में पहिचान-

निमोनिया रोग के जानने का सबसे सरल उपाय यह भी है कि स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी एक बार श्वास लेने में चार बार फड़कती है। परन्तु—

निमोनिया में-स्वास की गति तेज होजाने के कारण नाड़ी १ स्वास में ४ बार न फड़क कर २ या ३ बार ही फड़कती है।

टाइफाइड में-स्वास की गति तीव्र न होने के कारण एक श्वास में नाड़ी चार बार से भी कुछ अधिक बार फड़कती है। किन्तु टाइफाइड ज्वर में जब कफ की वृद्धि अधिक रूप से हो तो नाड़ी की गति निमोनियावत् होजाती है। तब यों परीक्षा करें-एक हाथ रोगी के पेट के ऊपर रक्खे और दूसरा हाथ रोगी की नाड़ी पर रक्खें। दोनों की संख्या को अलग २ लिख या ज़बानी हिसाब कर विचारें कि पेट १ बार फूलने (एक श्वास) में नाड़ी कितनी बार फड़कती है। यदि श्वास की संख्या से नाड़ी की संख्या दुगनी या तिगुनी हो तो अवश्य ही निमोनिया रोग हुआ जानो।

यदि श्वास की संख्या से नाड़ी की संख्या चतुर्गुण या अधिक हो तो टाइफाइड समझें।

निमोनिया रोग का काल-

यदि निमोनिया ज्वर वाले का मल और वातादि दोष विरुद्ध हो, अग्नि नष्ट हो जाय और उपरोक्त सब लक्षण सम्पूर्ण रूप से प्रकट हो जांय तो असाध्य जानना। और यदि इसके विपरीत हों तो कष्ट-साध्य जानना। तथा-७-१०-११ १२-१४-१८-२२ और २४ वें दिन तक इस ज्वर से मुक्ति पाने की या मृत्यु होने की अवधि निर्दिष्ट है।

साध्यासाध्य लक्षण

एकतः फुफ्फुसे दुष्टे ज्वरे ऽतीव्रे स्थिरे बले।
सम्यक् पादत्रये लब्धे सन्त्यत्र सुखसाध्यता ॥ १ ॥

अर्थात्–रोगी का अच्छा होना अथवा न अच्छा होना हृदय के ऊपर निर्भर है। रोगी बलवान होवे, ज्वर का वेग भी मृदु होवे और एक फुफ्फुस दूषित हुआ हो; वैद्य, परिचारक, औषधि, ये चिकित्सा के तीनों पाद उपयुक्त होने से रोगी अच्छा हो सकता है।

तात्पर्य–इस ज्वर में यदि क्रमशः ज्वर और वातादि त्रिदोष की लघुता, इन्द्रिय समूहों की प्रसन्नता, सुनिद्रा, हृदय परिष्कार, उदर और शरीर की लघुता, मन की स्थिरता और, लाभ, प्रभृति लक्षण प्रकट हों तथा उपरोक्त अवधि पूर्ण होजाय तो उस रोगी को आराम हो जाता है।

कृच्छ्र-साध्य लक्षण

स्वेदोऽधिकश्च ज्वरस्तीव्रो वृद्धः क्षीणोऽथवातुरः।
पादत्रयस्यसम्यक्त्वात् सतु जीवेत कदाचनः ॥ १ ॥

अर्थात्–पसीना अधिक निकले, तीव्र वेग से ज्वर आवे, रोगी वृद्ध अथवा क्षीण होवे। चिकित्सा के तीनों पदों (वैद्य, परिचारक, औषधि) के ठीक होने से रोगी कभी २ अच्छा हो जाता है।

तात्पर्य–असल में इस रोग में फुफ्फुस खराब हो जाता है और बहुधा सड़ भी जाता है। इस दशा में किसी कदर, लाल, मैला और पतला कफ निकलता है। फुफ्फुस के सड़ जाने

पर घोर बदबूदार पीप के जैसा बलगम निकलता है। ऐसे फुफ्फुस के खराब हो जाने पर रोग कष्ट साध्य हो जाता है अथवा फुफ्फुसों में दाह और जलन हो तो भी रोग कष्ट-साध्य समझना चाहिये। अगर यह रोग छोटे बालक, बूढ़े, स्त्री (खास कर गर्भवती औरत) या शराबी को हो जाय तो कठिनता से ही आराम होता है।

असाध्य (अरिष्ट लक्षण--

द्वावेव फुफ्फुसौदुष्टौ समग्रीयस्य वैकृतः।
नासाश्वासौ भृशं स्वेदो दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥१॥
मन्दंकिञ्चित् प्रलपति स्वेदस्नातः प्रमुह्यति।
वेपते करपादश्च प्राणास्तस्यापि दुर्लभाः ॥२॥
अतिसारेण चाऽक्रान्तो दुर्वारण भवेद्यदि।
क्षीणः श्वसनकेनार्त्तो दक्षिणाभिमुखो हि सः ॥३॥

अर्थात्--दोनों फुफ्फुस दुष्ट हों, जिसका समस्त शरीर रोग के विकार से पूर्ण ग्रसित हो गया हो, नाक से श्वास अधिक चलती हो, अतिसार हो, पसीना ज्यादा निकलता हो, उसका जीना दुर्लभ है। थोड़ा २ बके, पसीना से नहाय जाय, मोह को प्राप्त हो और हाथ पैर कांपते हों तो वह रोगी भी असाध्य है। यदि रोगी अतिसार से युक्त हो और वह अतिसार किसी विधि से निवारण न हो सके, दुर्बल हो और श्वास से अधिक पीड़ित हो, तो वह रोगी भी नहीं बच सकता है।

तात्पर्य—यदि मल और वातादि दोष विरुद्ध हों, अग्नि नष्ट हो जाय, और सब लक्षण सम्पूर्ण रूप से प्रकट होजायं तो असाध्य जानना, और—यदि दिन पर दिन निद्रानाश, हृदय की अरुचि मन में अस्थिरता और बल हानि आदि लक्षण प्रकाशित हों तो उपरोक्त निर्दिष्ट अवधि के भीतर ही रोगी की मृत्यु अवश्य होजाती है।

पथ्यापथ्य—

इस रोग में भोजन बिल्कुल तरल (पतला) देना चाहिये। दूध, साबूदाना, मुर्गी के अण्डे की सफेदी दे, और कोष्ठ बद्धता दूर करनी चाहिये। रोगी को साफ खुली हवा में रखे, पीने के लिये उष्ण जल अथवा औटाया हुआ जल शीतल करके दे। परन्तु जब तक इस रोग के लक्षण शान्त न होजायं और शरीर में लघुता न आजाय तब तक इसमें कोई गुरु (भारी) पदार्थ कदापि न देना चाहिये।

चिकित्सक को चाहिये कि सबसे प्रथम रोगी को २–३ दिन लंघन कराकर दूध का पथ्य देने की व्यवस्था करें। लंघन के समय पाचन और दोषों को शमन करने वाली औषधि का प्रयोग भी साथ में करते रहे। रोगी को साफ कमरे में जहां बहुत मनुष्यों की भीड़ न होती हो, और पवित्र वायु का संचार होता रहता हो, रखना चाहिये। जहां तक हो सके तेज़ रोशनी रोगी के कमरे में न करें। तिल तैल का दीपक या मोमबत्ती जलाना चाहिये।

रोगी के शरीर में उष्ण वस्त्र सदा पहिनाये रखें। जिससे सर्दी शरीर को कोई हानि न पहुंचा सके। रोगी को थकावट न आने देना चाहिए, क्योंकि साधारण परिश्रम से दुर्बल रोगियों को बहुत हानि पहुंचती है। उसके श्वास का वेग बढ़ता है और जीवनीय शक्ति कम हो जाती हैं। जहां तक हो सके रोगी को मलमूत्र भी खाट पर ही या निकट ही कराना चाहिए और पथ्यादि भी वहीं लाकर देना चाहिए।

अनुभूत चिकित्सा—

वायु—

बिल्कुल शुद्ध पहुंचनी चाहिए, क्योंकि जब निमोनिया रोगी को शुद्ध वायु नहीं मिलती हैं, तब उसका श्वास कष्ट विशेष बढ़ जाता है।

स्थान—

रोगी को ऐसे कमरे में रक्खे कि जहां पर न तो मनुष्यों की भीड़ हो और न धुवां वगैरहः जहरीली वायु का प्रवेश हो सके यानी, शुद्ध वायु और प्रकाश का संचार बराबर होता रहे। कमरे में सर्दी का नामो-निशान तक न हो, रोशनी का प्रबन्ध तेज नहीं हो, इसके लिए तिल तैल या मोमबत्तियां उत्तम होती है। मलमूत्र का स्थान उसी में या पास ही रहना चाहिए ताकि रोगी को उठने बैठने में अधिक कष्ट न हो, परन्तु अति शीघ्र उसे बराबर साफ करते जाना चाहिये। स्थान किसी भी प्रकार दुर्गंधित न हो।

वस्त्र-

रोगी के वस्त्र-बिछावन और ओढ़ने के सुलायम तथा निहायत ही साफ होने चाहिए। इसके लिए ऊनी वस्त्र अच्छे होते हैं। रोगी को गले से नीचे छाती तक या पेट तक साफ मुलायम ऊनी-वस्त्र (स्वेटर) पहना देना चाहिए, जिससे छाती और पेट में ठण्डी हवा न लग सके। मुखमण्डल खुला रहे, कान और गर्दन कुछ छिपे रहें तो कोई हर्ज नहीं।

दुग्ध [और उसका विधान]—

दुग्ध	१ सेर,	पानी	१ सेर
बीज रहित मुनक्का			२० नग
अदरख			३ माशा

—इन सबको कढ़ाई में डाल मन्दाग्नि से पचावें, जब केवल दुग्ध मात्र शेष रहे, तब उतार कर छानले। ठण्डा होने पर उसका बलानुसार उचित मात्रा से प्रयोग करें।

जल

पीने के लिये जल अर्धावशिष्ट औटा हुआ, साफ कपड़े से छना हुआ दें। किंचित् सुखोष्ण (गुनगुना) जल पीना उत्तम है। यही नहीं किन्तु सर्दी से लेकर निमोनियां पर्यन्त हर दशा में उष्ण जल पीना परम लाभदायक है। इससे कफ-वायु के स्रोत शुद्ध होते हैं और अग्नि दीप्त होती है।

लंघन

निमोनिया ज्वर में जब तक क्षुधा मन्द, दोषों की अधिकता ज्वर का अधिक उत्ताप, गुरुता, तन्द्रा, मलबद्धता, शरीर, नेत्र तथा पेट का भारीपन, अधोवायु की रुकावट और शरीर का जकड़ाव हो तथा तीव्र क्षुधा, मन, इन्द्रिय की प्रसन्नता और शरीर का हलकापन न हो, तब तक उपवास करना ही श्रेष्ठ है। तीव्र भूख होने पर साबूदाना वगैरहः हलका पथ्य देने से हानि नहीं होती। किन्तु अल्प क्षुधा में, रोग वृद्धि के समय, हल्का पथ्य भी हानि करते देखा गया है। इस लिये जब तक रोगी प्रसन्नेन्द्रिय न हो, दोषों की सम अवस्था दूर न हो तब तक लघु पथ्य भी नहीं देना चाहिये। ऐसी अवस्था में वैद्य को उपवास से डरना नहीं चाहिये। कारण—"कफानिले द्रवे धातू सहेते लंघनं महत्" इत्यादि बचनों को याद रखना चाहिये। यदि रोगी अत्यन्त दुर्बल हो और अनिष्ट होने की आशङ्का हो तो भले ही थोड़ा उष्ण दूध मुनक्का औटाया हुआ देना चाहिये। यदि दस्त पतले हों तो मुनक्का न देवे, किञ्चित बिल्व गिरी, सोंठ या पीपल डाल कर औटाया हुआ दूध देना चाहिये।

परिचारक को कुछ सूचनायें

१—रोगी के हाथ पैर मैले हो जावें, तो गर्म जल या साबुन से साफ कर लेना चाहिये।

२—नख यदि बढ़ गये हों तो ें कटवा दें।

३—निमोनिया रोगी यदि कफ के स्निग्ध व चेपदार होने के कारण थूक न सके तो सेवक को चाहिये कि मुख में हाथ डेकर रुई या कपड़े से कफ निकाल ले।

४—कफ को मिट्टी के (दिये हुये) पात्र में थूकना चाहिये, दीवारों पर या यत्रतत्र कदापि न थूके तथा वह (थूक—पात्र) पीकदान दिन में प्रातः मध्यान्ह और सायं नित्य अच्छी तरह से साफ करा जावे या नया बदलता जावे।

५—मालिश करने का क्रम—यह है कि पंजरास्थि, यानी पांजर की हड्डी जिस प्रकार से लगी हुई है, उसी प्रकार सीधे हाथ से मेरुदंड (रीढ) पर्य्यन्त मालिश करना चाहिये।

६—यदि ज्वर में १०३ तथा १०४ डिग्री के ऊपर शरीर का उत्ताप पाया जाय तो गर्मी के नाशार्थ मस्तक में लेप करने के लिये माथे के केश छोटे करवा दें या उस्तरे से कटवा दें।

७—रात्रि को लेप कदापि न लगावें, उस समय मालिश आदि की औषधियों का प्रयोग करे। लेप दिन में प्रातःसायं करावें। सायंकाल के पहिले पहले ही करा दें; पट्टी हर समय की बदल दें, पट्टी मुलायम रुई धर कर उस पर बांधें, अधिक कस कर पट्टी बांध देने से श्वास क्रम बढ़ जाता है और रोगी को दुःख तथा हानि होती है।

उग्र लक्षणों की चिकित्सा

ज्वर तथा सिर दर्द की अधिकता में

इस रोग में ज्वर शांत होने की औषधि नहीं करनी चाहिये क्यों कि रोगी के हृदय की गति दुर्बल होती है। अतएव ज्वर शांत होने की औषधियों का उपयोग करने से हृदय अधिक निर्बल हो जाने की सम्भावना है; अर्थात् हार्ट फेल (Heart fail) होकर मर जाने का डर है।

८—केवल जल में भीगा कपड़ा सर पर रक्खें।

९—शोरे के पानी मे भीगा कपड़ा सिर पर रक्खे।

१०—नौसादर के पानी से भीगा कपड़ा सर पर रक्खें।

१०—दशांग लेप ५ तोला को सिल पर पीस कर उसको कपड़े पर लगा कर सिर पर रक्खें।

दशांग लेप

सिरस की छाल, मुलैहठी, तगर लाल चन्दन
इलाइची, जटामांसी, हल्दी दारुहल्दी
कूठ नेत्रबाला —यह सब सम भाग लें।

जल में पीस पांचवां हिस्सा घृत में मिला कर लेप करे।

१२—शोरा और अतीस की २—२ रत्ती की पुड़िया २—२ घंटा बाद गरम पानी से दें, यह मूत्रल और कफ निस्सारक है।

मूर्छा, तृषा, अनिद्रा आदि उपद्रवों पर—

१३—मस्तक के बालों को कटवा कर पुराने गौ घृत की मालिश करावे।

१४—ललाट पर बकरी का दूध थोड़ा २ देते रहें या इकहरे कपड़े की पट्टी—उक्त दूध में तर करके ललाट पर रक्खे।

१५—बर्फ की टोपी सिर पर रखनी चाहिये।

१६—जल में कपूर मिला कर, मस्तक पर पट्टी दें।

१७—ईख का सिरका लेकर जल मिला कर मस्तक पर पट्टी दें।

१८—त्रिफलादि घृत या ब्राह्मी घृत की मस्तक पर मालिश करें।

त्रिफलादि घृत

त्रिफला का रस ६४ तोले

अर्थात्—हर्र, बहेड़ा, आमला (२० २० तोले) को अठगुने (८ सेर) पानी में औटावें, जब चतुर्थांश रहे, तब नीचे उतार कर छान लें—इसे रस या स्वरस कहते हैं) इसी प्रकार—

बांसा का रस	६४ तोले
भांगरा का रस	६४ तोले
बकरी का दूध	६४ तोले
घृत	६४ तोले ले। फिर—

त्रिफला,	पीपल,	दाख,	चन्दन,
सेंधा नमक,	खरैटी,	काकोली,	क्षीर काकोली,
मेदा,	मिर्च	सोंठ	शक्कर

श्वेत कमल, साठी, हल्दी, दारुहल्दी मुलैहठी —ये उन्नीसौ १-१ तोला लें। इनका कल्क बना उपरोक्त सब चीजों को तथा इस कल्क को भी कढ़ाई मे डाल कर घृत-पाक विधि से सिद्ध करके (घी मात्र शेष रहने पर) उतारले, छान कर बोतलों में भर लें।

ब्राह्मी घृत

ब्राह्मी स्वरस	२५६ तोला
गौघृत	६४ तोला

हल्दी, मालती, कूट, निशोथ, पीपल, वार्यबिडङ्ग, सैंधानमक, शक्कर वचमीठी —ये सब १-१ तोले ले।

—घृत पाक विधि से (मद अग्नि पर पकावे) सिद्ध करके घी मात्र रहने पर रखले। यही ब्राह्मी घृत है।

पार्श्व वेदना पर

१६—यदि पार्श्वशूल अधिकता मे हो तो फस्त (रक्त मोक्षण) करादे वा वेदना स्थान पर ७-८ जलौका (जौंक) लगवा दें।

२०—तारपीन का तेल १ तोला, कपूर ६ माशा पिपरमेंट ७ माशा, अजवाइन का सत्त ६ माशा

—सब से चौगुने नारायण तैल में मिला कर छाती पर मालिश करें और ऊपर से आक के पत्ते सेंक कर बांध दे। उसके ऊपर गरम ईंट या घड़े के खोपड़े का सेंक करें।

२१-वक्षःस्थल पर पुराना घृत लगाकर खूब सेक करदे। बाद को ऊनी कपड़ा सेंक कर बांध दें।

२२-अलसी की पुल्टिस भी बांधनी चाहिये।

२३-भड़भूंजे के यहां की बालू में ईख का सिरका मिला कर स्वच्छ कपड़े में बांधे, आग पर तवा रख बारम्बार पोटली को गर्म कर छाती में जिस स्थान पर वेदना हो, सोहाता २ सेके।

२४-सरसों का तेल आग पर गर्म कर उसमे २ रत्ती अहिफन (अफीम) मिला मालिश करे।

२५-बारहसिंगी का शृङ्ग पत्थर पर, पानी मे चन्दन की भांति घिस कर, गर्म करके, दर्द वाले स्थान पर लेप करे।

२६-अफीम, हींग, गेरू, सोंठ चारों समान भाग लेकर ईख के सिरका मे पीस गर्म कर पार्श्व या छाती अर्थात् जिस स्थान पर दर्द होता हो वहां लेप करें। एरंड के पत्ते गर्म करके लेप किये हुए स्थान पर रख ऊपर से पट्टी बांधदे। पट्टी अधिक न कस दी जाय, जिससे रोगी को श्वास लेने मे कष्ट हो।

२-एक छटांक सरेस पानी मे घोल, आग पर गर्म करके, दर्द हाने वाले स्थान पर लेप करें ऊपर से बारीक कागज चिपका कर धुनी हुई रुई का फाहा रखकर पट्टी बांधदें, दर्द शीघ्र ही शांत होजायगा।

२८-बादाम का तेल, ईसबगोल का तेल १-१ तोला
इस्बगोल अलसी ६ ६ माशा

—इनमें से प्रथम ईसबगोल और अलसी को महीन पीस लें, पुनः तेल में मिला कर गर्म करें। फिर पार्श्व या छाती जहां पर पीड़ा होती हो, लेप करें तो तुरन्त पीड़ा शांत होती है

२६–एरंड तैल गर्म कर मालिश करें, फिर एरंड पत्र पर एरंड तैल लगा गर्म कर ऊपर बांध दें।

३०–तारपीन का तेल गरम कर मालिश करें।

इन प्रयोगों के करने से कफ पतला होकर बाहर निकल जाता है और फेफड़े स्वस्थ होजाते हैं, तभी लाभ प्रतीत होता है।

कास पर–

३१–"रसेन्द्रसार संग्रह" के कासाधिकार में वर्णित "चन्द्रामृत" के प्रयोग से कास बिल्कुल नष्ट होजाती है।

३२–यदि कफ न निकले तो पांचों लवण, नवसादर, फिटकरी सुहागा को आक के दुग्ध में भावना देकर फूंकलें। इस की २ २ रत्ती की मात्रा बांसावलेह के साथ प्रयोग करने से कफ निकलने लगता है।

३३–सितोफलादि चूर्ण या च्यवनप्राश भी अच्छा काम करता है।

३४––सौंफ, मुनक्का, लिसोढ़ा का क्वाथ दिया जाय तो कफ पतला होकर बाहर निकल जाता और कास नष्ट होजाती है।

३५–काकड़ांसिंगी, कायफल, पुष्करमूल, छोटी पीपल सम भाग लेकर महीन पीस ३ माशे चूर्ण, शहद ६ माशे में चटावें, तो

इससे कफ पतला होकर निकलने लगेगा और श्वास, कास, ज्वर आदि उपद्रव शीघ्र शांत होंगे।

कहा है:-दो कक्कों को पकड़ कर, दो पप्पों से मेल।
मधु मे मेल मिलाय कर, पांचों कास ढकेल॥

अर्थात्-कर्कट श्रृङ्गी, कायफल, पीपल, पुष्करमूल।
चूर्ण मिला मधु लीजिये, हरे कास दुख शूल॥

३६-बंशलोचन, श्वेत इलायची के बीज, मुलैठी, मुनक्का, सत्त गिलोय इन सबको समभाग ले महीन पीस उचित मात्रा में शहद के साथ चटावें तो-कफ पतला होकर निकल जायेगा।

३७-द्राक्षावलेह भी लाभप्रद है।

श्वास कष्ट पर—

३८—उत्तम चन्द्रोदय, विजयाचूर्ण, केशर, नौसादर चारों २-२ रत्ती। इनकी ४ मात्रायें बनाकर यथोचित शहद से उपयोग करें।

३९-महा श्वासकुठार रस, कायफल के अवलेह से काम में लावें।

४०-श्रृङ्गादि चूर्ण विशेष लाभप्रद है, यह ग़रीब बंधुओं के लिये सोने में सुगन्ध ही है।

४१-श्रृङ्गादि क्वाथ, कफकेतुरस, केशर वटी, स्वल्प कस्तूरी भैरव रस इनका प्रयोग भी अत्यन्त हितकर है।

अजीर्ण-आध्मान और मलावरोध पर—

प्रायः सभी रोग अन्तड़ियों में दूषित मल का संचित होने से ही होते हैं। इसलिये इस रोग के आरम्भ में ही वस्ति कर्म द्वारा मलाशय को धोकर साफ कर लेना चाहिये। यदि किसी अवस्था में नाभि के चारों ओर दर्द, मलावरोध, भारीपन आदि मालूम हो, तो अनिद्रा हो लवण मिश्रित वस्ति का उपयोग करना ही अच्छा है।

वस्ति कर्म का योग—

४२–१ सेर पानी में ३० नग गेहूं के दाने के समान नमक मिला, गरम कर वस्ति प्रयोग करें।

४३–वज्रक्षार चूर्ण–गरम जल के साथ लें।

४४–शंखादि चूर्ण का सेवन भी हितकर है।

४५–घोड़ाचोली रस (अश्वकंचुकी रस) की २ गोली गरम जल या सौंफ के अर्क से प्रयोग करें।

अतिसार में—

४६–गंगाधर रस दशमूल क्वाथ से प्रयोग करें।

४७ यदि दूध से दस्त आते हों तो दूध में आधा [सिर्फ अष्टमांश-सं.] चूने का पानी मिला कर गरम कर, काम में लावें।

दाह तृषा और वमन के लिये—

४८–[illegible]माशु रस का प्रयोग करें तो तत्क्षण लाभ हो।

हिमांशु रस-

५ तोले सिरके को इतनी ही मिश्री डालकर खरल करें, जब मिल जावे, तब कपड़ छान करले और उसमें—

१ तोला पिपरमेंट, ६ माशा चन्दन और-
नेत्रबाला, मोथा, बालछड़, छोटी इलायची-सब ३-३ माशेः
कहरवा, संग जराहत, वंशलोचन, गेरू, मोती सीप भस्म
६ ६ माशे। डालकर अर्क बेद मुश्क और गुलाब जल में
खरल कर शीशी मे रखले। मात्रा-१॥ माशे से २ माशे तक।

अनुपान-इमली के पने में मीठा मिला कर देना।

४६-वमन के लिये केवल राई का पलस्तर जिसमे कपूर मिला हो छाती पर लगाना लाभदायक है।

प्रलाप के लिये--

जिसमें बेहोशी अधिकता से हो, दशमूल १ तोला, ब्राह्मी ३ माशा, शंखपुष्पी ६ माशे के क्वाथ के साथ १ रत्ती-चन्द्रोदय दे और जहां तक हो सके रोगी से बात-चीत न करे-

मूत्रावरोध के लिये--

१ गोली चन्द्रप्रभा वटी ६ रत्ती शोरे के पानी से दें।

पतनावस्था--

[नाड़ी और हृदय की दुर्बलता तथा अकस्मात् स्वेद वाली खराब हालत पर]

५०–कस्तूरी ५ रत्ती, चन्द्रोदय ५ रत्ती, इन दोनों को मिलाकर ५ मात्रा बनालें और १ मात्रा २ तोले किसी भी सुरा के साथ प्रयोग करें। मृतसंजीवनी सुरा के साथ प्रयोग करने से शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

५१–कुचला ३ रत्ती, हींग ३ रत्ती, कस्तूरी ३ रत्ती, इनकी ६ मात्रा बनाकर सुरा से प्रयोग करें।

५२–कस्तूरी २ रत्ती, कपूर २ रत्ती, कुचला २ रत्ती इनकी ६ मात्रा बनाकर, यथा समय मधु से चटाकर, ऊपर सुरा पिलावे।

५३–मल्लसिन्दूर १ रत्ती, मृत संजीवनी सुरा के साथ प्रयोग करें या द्राक्षारिष्ट के साथ दें।

५४–बसंत तिलक रस १ रत्ती, दशमूलासव से प्रयोग करे।

५५–विष मुष्टि आसव की ८-८ बूंदें २॥-२॥ घंटे के अन्तर से प्रयोग करे। मैं इसको जटिल नाड़ी मन्द होने वाली अवस्था में मल्ल सिन्दूर के साथ प्रयोग कराकर लाभ पाता रहा हूं।

विष मुष्टि आसव का योग–

कुचिला ३ तोला, चिरायता १ तोला, मोथा १ तोला, गिलोय १ तोला, मुनक्का ४ तोला, जायफल ६ माशा दालचीनी ३ माशा, लौंग ६ माशा, दपार ६ माशा, दोनों अजवायन ६ माशा, दोनों जीरे ६ माशा काकड़ासिंगी १ माशा, गुड़ ३० तोला, पानी २ सेर

कांच के बर्तन में भर मुख बन्द कर १ मास रखा रहने दें। फिर छान कर बोतलों मे भर कर प्रयोग में लावें।

५६–इस रोग में विशेष ध्यान हृदय की निर्बलता का रखना उचित है। यदि हृदय अधिक निर्बल है तो चन्द्रोदय, स्वर्ण सिंदूर या बसंत मालती पान मे रख कर दें।

मल्लसिन्दूर, ताल सिंदूर, बंसत तिलक रस, चन्द्रामृत रस, मकरध्वज, श्वासकुठार रस, श्वासशार्दूल वटी, कल्पतरु रस, कफकेतु रस, कफ कुञ्जर रस और लक्ष्मी विलास आदि रस उचित अनुपान से देना भी लाभदायक है।

रोगान्त की दुर्बलता निवारणार्थ

च्यवनप्राश अवलेह, अभ्रकाभ्र रस, बसंत तिलक रस, बसन्तमालती, मकरध्वज रस, केशरवटी, नवजीवन रसायन, धातु संजीवनीवटी आदि औषधि उत्तम है।

नोट—जिन २ योगों का ऊपर वर्णन कर आये है। वे योग रसेन्द्र सार, भैषज्यरत्नावली, शार्ङ्गधर, चरकसंहिता आदि ग्रन्थों मे वर्णित है। पाठकगण कृपया उनसे देखकर बना सकते है।

अवस्थानुसार व्यवस्था

निमोनिया की प्रथमावस्था–

जब ज्वर भाव सर्दी ग्लानि, जकड़ापन, दर्द आदि लक्षण हों, तो छाती पर उपरोक्त लेप कर पट्टी बांधे या —

५७–निमोनिया हर उत्तम प्रयोग–
तारपीन का तेल ३० बूंद कड़ुवा तेल २ तोला,
अफीम ३ रत्ती, कपूर, चूना, नवसादर १–१ रत्ती

इनको महीन पीसकर जरा सुसुम २ गरम छाती में मालिश करे और रुई से मन्द २ सेकें, इससे खांसी का वेग कम होजाता है।

५८–प्रत्येक औषधि के साथ कफ को पतला कर शीघ्र निकालने वाले सुहागा, जवाखार, नवसादर आदि २ द्रव्यों का उपयोग अवश्य करना चाहिये।

५८–इस अवस्था में–लक्ष्मी विलास रस १ वटी–पान के रस और मधु के साथ साथ ३-३ घण्टे पर दे।

५६–मृत्युञ्जय रस—अदरख स्वरस और मधु मे २-२ घण्टे पर दे।

६०–आनन्द भैरव रस–तुलसी के क्वाथ के संग दें।

६१–संजीवनी वटिका–अभयादि क्वाथ के साथ दें।

६२–सुदर्शन चूर्ण–क्रमशः दिन मे ४-५ मात्रा करके देने पर लाभ देखा गया है।

निमोनिया की द्वितीयावस्था—

पथ्य—मुनक्का से औटाया हुआ उपरोक्त दुग्ध दे।

इस अवस्था में वत्सनाभ युक्त औषधि का कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिये और न अहिफेन या भङ्ग मिश्रित औषधि ही दे।

अति कठिन खांसी, छाती में अत्यन्त दर्द, रक्त मिला हुआ गाढ़ा कफ निकलना, नाड़ीकी द्रुतगति, इत्यादि लक्षण हों तो—

६३—श्वेताभ्रक भस्म, दशमूल क्वाथ के प्रयोग करने से विशेष लाभ होते देखा गया है।

६४—चन्द्रोदय, महालक्ष्मी विलास रस, सहस्र पुटित लौह भस्म, इनमें से कोई भी औषधि अडूसा के रस के साथ मधु मिला कर २-२ घण्टे पर देने से विशेष लाभ होता है।

६५—इस अवस्था में विशुद्ध हरताल भस्म भी अत्यन्त प्रभावशाली है। वैद्य को चाहिये कि उचित अनुपान से और रोगी के बलानुसार इसका सेवन करावे। तथा—

छाती पर पहिले कही औषधियों की मालिश करे।

पथ्य—पूर्ववत दुग्ध, द्राक्षा।

निमोनिया की तृतीयावस्था में—

जब बार २ खांसी आती हो छाती में सुई चोभने की सी पीड़ा हो, सांस लेते में दर्द बढ़ना आदि लक्षण हों तो—

६५—चन्द्रामृत रस—पान के रस में मधु मिला कर दे।

६६–बृहद् कस्तूरी भैरव रस अथवा कृष्णाभ्रक भस्म. मालती वसन्त, गुडूची के रस में मधु सङ्ग प्रात सायं देने से भी कफ पतला हो जाता है। और यदि--

६६–वर्ण मलिन, श्वास प्रश्वास मे कष्ट, कफाधिक्य, मूर्छा आदि असाध्य उपद्रव उपस्थित हों तो–

चन्द्रोदय १ रत्ती. अद्रक रस में मधु मिला कर देना चाहिए।

६७–ताल चन्द्रोदय, विष चन्द्रोदय, षड्गुण बलिजारित सिद्ध मकरध्वज, सहस्त्र पुटित अभ्रक भस्म, सहस्त्र पुटित लोह भस्म मल्लसिंदूर, समीर पन्नग रस, लक्ष्मी नारायण रस, कस्तूरी आदि आदि रस अनुपान-भेद से अथवा पान के रस और मधु के साथ देने चाहिये।

अचूक चिकित्सा

छाती के दर्द पर

६८ लेप–अफीम शुद्ध सोंठ का चूर्ण, कायफल का चूर्ण काकड़ासिंगी का चूर्ण और पुष्कर मूल का चूर्ण ३–३ माशा। फुलाई हुई फिटकरी १ तोला भर ले। फिर इन सब चीजों को थोड़ा पानी देकर, सावर श्रृङ्ग से घोटे। यहां तक कि जितना महीन हो घोटे। फिर इस लेप को आक के पके हुए पीले पत्तों पर घी लगा के दोनों तरफ अग्नि पर सेक लें और पत्ते पर सुसुम २ लेप लगा दर्द स्थान पर चिपका दें। ऊपर से धुनी हुई रुई की हल्की पट्टी बांध दे। प्रातः काल और सायंकाल ३-४ बजे लेप

लगा कर पहिली पट्टी बदल दें। यदि दिन में दोनों समय पट्टी न बांध सकें तो एक समय ही बांधें । ६९–अदरख का रस, आक के पीले पत्तों का रस और पुराना गाय का घी मिला सुसुम-सुसुम मालिश करें। ऊपर से अलसी की पुल्टिस बांध दें। याद रहे कि पट्टी हल्की बाधनी चाहिये, जिससे श्वास लेने में कष्ट न हो। इस लेप से छाती का जमा कफ पतला होकर निकलने लगता है और दर्द आराम हो जाता है। यदि किसी कारण लेप और पट्टी देने में बिलम्ब हो तो–७०– घृत भर्जित प्याज को कूट कर थोड़ा नमक मिला मन्द सेंकना चाहिये।

७१–उत्तम शराब ३० तोला, कपूर, ५ तोला
तारपीन का तेल १० तोला अफीम १ माशे
साबुन देशी ६ माशे जीरा स्याह २ तोला
और जायफल ४ तोला लें।

–कूटने योग्य वस्तु को कूट पीसकर सबको एक बोतल में भरकर ७ दिन तक धूप में रक्खे। फिर छान करके बोतल में रखले।

सेवन–निमोनिया मे दर्द के स्थान पर छाती पर लगा कर मलें।

गुण–शिर, कण्ठ, छाती, पिंडली, नख से शिख तक के सभी दर्द दूर होकर निमोनियां में चैन पड़े।

१–पिपरमेंट और २–कपूर १।–१। तोला
३–तेल लौंग ४–तेल इलायची ५–तेल दालचीनी
६–तेल लोहबान ७–तेल यूकेलिप्टस ८–तेल जायफल
हर एक ३॥-३॥ माशे

९–मोंम देशी असली २॥ तोला, १०–तेल बादाम ४ तोला
११–गाय का शुद्ध घी ४ तोला

बनाने की विधि–पहिले औषधियों को किसी शीशी में डाल कर काग लगा धूप में रखदें, जब पानी के समान तरल हो जावे तब तीसरी से आठवीं तक की औषधियां भी मिला दें और शीशी की डाट लगा कर फिर धूप मे रख दें। और किसी चीनी या कलईदार पात्र मे गाय का घी डाल कर आग पर रखदें। जब पकने लगे तब मोंम भी उसी में डाल दें। जब मोंम भी खूब गल जाय तो नीचे उतार कर फौरन बादाम का तेल और नं० १ से आठ तक की औषधियां जो कि शीशी मे है इसी घी मे मिला कर खूब हल करदें, फिर साफ कपड़े मे डाल कर दूसरे किसी कलई दार पात्र में छान दे और ठण्डा होने पर शीशी में भर कर कड़ी डाट लगा कर सुरक्षित रखले।

गुण–निमोनिया मे छाती, हंसली के दर्द को तत्काल दूर करता तथा शिर दर्द, चोट, मोच का दर्द और पट्ठों आदि के दर्द पर भी अत्यन्त गुणकारी है।

नोट-यह दवा केवल बाहर लगाने के काम में ही आती है।

७८–एक छटांक बाहरसिंगे के सींग का टुकड़ा आग मे जलाकर, थूहर के दूध से रगड़ कर, गजपुट में कपरौटी कर फूंक दें। बस इसी प्रकार ३ आंच दें। भस्म तैयार है। इसमें से २-२ रत्ती प्रातः और सायंकाल मिश्री और स्याह जीरे के साथ सेवन करने से निमोनिया मे अपूर्व लाभ दिखाती है।

७३-कुचिला १५ तोला, लौंग १५ तोला, हरमल १५ तोला पाताल यन्त्र में तैल खींच कर रखलें। इसे पान पर रख थोड़ा फैला कर दर्द पर बांधने से कुछ उपाड़ सा होगा। दो बार बांधने से आरोग्य हो जायेगा तथा सादे पान में १ २ चावल तैल ३ बार खिलाना भी चाहिये।

खांसी और श्वास आदि में

७४-शृङ्गादि चूर्ण-

यह योग निमोनिया रोग में विशेष लाभप्रद है। यद्यपि उपरोक्त वर्णित अनेकों उत्तम योग हैं मगर वह अमीरों के ही योग्य हैं। प्यारे गरीब बन्धु जो स्वर्ण घटित, कस्तूरी अभ्रकादि बहुमूल्य रसायन सेवन नहीं कर सकते हैं उनके लिये यह परम लाभप्रद है। यह फुफ्फुस के श्लेष्मा को पतला कर के सावधानी पूर्वक बाहर निकाल रोगी को चङ्गा कर देता है।

काकड़ासिंगी सोंठ मिर्च पीपरी भारङ्गी
बड़ी हरड़ का छिलका आंवला सेंधा नमक सांभर नमक

कचलोना असली, सांचर नमक, कण्टकारीमूल, पुष्करमूल असली जवाखार उत्तम, प्रत्येक १-१ तोला लें। कूट कपड़ छान कर शीशी में रखलें। मात्रा—१॥ माशे से २ माशे तक। अनुपान-गर्म जल समय-दिन में ३ बार। गुण-फुफ्फुस के श्लेष्मा को पतला कर बाहर निकाल देता है। तथा बच्चों की कुकर खांसी को जड़ से खो देता है। नोट-औषधि ताजी व उत्तम होनी चाहिये।

७५ कफ की अधिकता पर

पीपल, वंशलोचन, काकड़ासिंगी, अतीस, कायफल और भारंगी —सातों का बारीक चूर्ण कर शहद में चटावें।

७६—अभ्रक भस्म १ माशा, कांतिसार लौह भस्म १ माशा छोटी पीपल वंशलोचन दोनों २-२ माशा

इन सबको मिला रखलें। पुनः ४ रत्ती औषधि ६ माशे शहद में मिला कर प्रातः सायं चाटें।

७७ निमोनिया नाशक क्वाथ

कर्कोटक और रक्तष्ठीवी आदि चाहे जिस २ सन्निपात के लक्षण प्रगट होते हों, परन्तु यह काथ निमोनियां की प्रत्येक दशा में लाभप्रद सिद्ध हुआ है। योग—

(×) काकड़ासिंगी, भारङ्गी, हर्र, जीरा, पीपल, चिरायता, पित्त पापड़ा, देवदारु, दुड़वच, कूट, जवासा, कायफल, सोंठ, नागरमोथा, धनियां, कुटकी, इन्द्रजौ, पाढ़, रेणुका, गजपीपल चिरचिरा, पीपला मूल, चित्रक, इन्दायण, अमलतास, नीम, कचूर, बावची, बायविडङ्ग, हल्दी, अजवाइन और अजमोद सब समान भाग। इन ३३ दवाइयों का काथ-विधि से तैयार कर उसमे हींग और अदरक मिला कर पीने से तत्काल लाभ दिखाई देता है तथा ज्वर, तन्द्रा, प्रमेह, कान पीड़ा और १३ प्रकार के भयङ्कर सन्निपात, हिचकी, श्वास, खांसी और सब उपद्रव नाश होते है।

७८—उत्तम कृष्णाभ्रक भस्म, माणिक्य रस, धातु संजीवनी वटी ३-३ माशा और स्वर्णमाक्षिक भस्म १ माशा ले। चारों को महीन पीस १ रत्ती से २ रत्ती पर्यन्त पान के रस से ३-३ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

गुण—इससे कफ पतला होकर बहुत सरलता से निकल जाता है और सम्पूर्ण उपद्रवों से युक्त निमोनिया आराम हो जाता है। निमोनिया की कैसी ही बिगड़ी हालत हो यह देने से शीघ्र फल दिखाई देता है, नाड़ी को बल देता है, कफादि दोषों को शांत करता है और नींद लाता है। निमोनिया की सर्वोत्तम औषधि है।

७९-धातु संजीवनी वटी--

स्वर्ण वर्क १ भाग, कस्तूरी २ भाग, चांदी वर्क ३ भाग केशर ४ भाग, छोटी इलायची के बीज ५ भाग, जायफल ६ भाग, वंशलोचन ७ भाग, जावित्री ८ भाग। सबको बकरी के दूध मे घोटें। पुनः पान के रस मे घोटें। बाद मे मूंग बराबर गोली बना सुखा कर शीशी मे रख ले। यही धातु संजीवनी वटी है।

८०— निमोनिया में जब नाड़ी क्षीण हो तथा पसीना देकर ज्वर कम हो जाय अथवा दस्त ज्यादा होने से शीताङ्गादि उपद्रव हों तो "नवजीवन रसायन" की एक गोली पान में रख कर दें।

नवजीवन रसायन-

शुद्ध उत्तम नया कुचला कृष्णाभ्रक भस्म

स्वर्णवटित मकरध्वज उत्तम लोह भस्म
त्रिकुटा चूर्ण –पांचों समान भाग ले।

–इनको अद्रक रस में घोट १ रत्ती प्रमाण गोली बनालें। बस इसका ही नाम "नवजीवन रसायन" है। इससे नाड़ी बलवान रहती है और वात कफ के सम्पूर्ण उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

८१–निमोनिया आराम होने के बाद निर्बलता दूर करने के लिये अथवा कुछ २ खांसी वगैरहः की विशेषता में नीचे लिखी औषधि का प्रयोग करना चाहिये।

उत्तम मृगशृङ्ग भस्म ३ माशे, कृष्णाभ्रक भस्म ३ माशे
उत्तम निरुत्थ ताम्रभस्म १॥ माशे,

–तीनों को खूब खरल कर शीशी में भर ले।

मात्रा १ या १॥ रत्ती भर अवस्थानुसार १ समय पान के रस में अथवा अडूसा के रस में देने से अतीव गुणदायक है।

८२–शुद्ध सिंगिया विष १ तोला, शुद्ध अमलतास गंधक २ तोला
शुद्ध मल्ल भस्म ६ माशे, शुद्ध ताम्रभस्म सहस्रपुटी ६ मा०
अभ्रक भस्म सहस्रपुटी ६ माशे अकरकरा १ तोला
जावित्री १ तोला, जायफल १ तोला, लवङ्ग १ तोला
सिद्ध मकरध्वज षड्गुण बलि जारित ६ माशे
शुद्ध कुचला ३ तोला, पीप्पल छोटी ३ तोले

विधि- सबको कूट कपड़ छान कर बंगला पान के रस की मान भावना दें, १-१ रत्ती भर की गोली बना शीशी में रखलें।

मात्रा—१ गोली या बलानुसार। अदरख के स्वरस में सम भाग मधु मिला कर उसके साथ दें।

गुण—यह गोली निमोनिया पर हमारी सैंकड़ों बार की परीक्षित हैं। अति शीघ्र रोग मुक्त करती हैं। इसकी जितनी भी प्रशंसा की जावे थोड़ी है क्योंकि हमने असाध्य हालत पर भी इसका प्रयोग किया तो इसने अति शीघ्र अपना चमत्कारिक गुण दिखा कर हमें यश प्राप्त कराया।

८३ केशर वटी—

उत्तम केशर, जायफल, जावित्री, लवङ्ग, पिपरांगा १ १ तोला उत्तम कस्तूरी, तालमाणिक्य भस्म ३ माशा लें।

—पान के रस में ३ दिन, फिर अदरख के रस मे ३ दिन खूब घोट कर १-१ रत्ती की गोली बनाले। मात्रा-१ से ४ गोली तक बलानुसार। अनुपान-पान का रस।

समय-आवश्यकतानुसार प्रातः सायं दें।

गुण-निमोनिया की असाध्यता मे अति श्रेष्ठ है।

८४ स्वल्प कस्तूरी भैरव रस—

शुद्ध सिंगरफ	शुद्ध मीठा विष	शुद्ध सोहागा
जावित्री	जायफल	काली मिर्च
पीपल	असली कस्तूरी	—सब समानभाग ले

—पानी में खूब खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर शीशी में भर कर रखले। निमोनियां अथवा अन्य सन्निपात में भी इन गोलियों को बलानुसार अदरख के स्वरस में देने से अतीव लाभ होता है।

कफ कुञ्जर रस

शंख भस्म, सोंठ, कालीमिर्च शुद्ध सोहागा —ये १—१ माशे और शुद्ध मीठा विष ५ माशे, —सबको अदरख के रस में ३ बार खरल करें। १-१ रत्ती की गोलियां बनालें। इन गोलियों को बलानुसार अदरख के रस के साथ देने से कफ की वजह से रुका हुआ गला खुल जाता है और भयंकर निमोनियां में भी यह अच्छा काम करता है।

और भी आवश्यकतानुसार--

निमोनियां की शास्त्रीय औषधियां

लक्ष्मी विलास रस, कांचनाभ्र रसायन, चन्द्रामृत रस, श्वास कुठार रस, श्वास चिन्तामणि रस, सोमनाथ ताम्र, बृहत कस्तूरी भैरव रस, कल्पतरु रस, अग्नि रस, अष्टादशांग क्वाथ, शृंग्यादि क्वाथ, भार्गीगुड़, बांसावलेह आदि २ उत्तम औषधियां है— जिन्हें पाठक-गण शार्ङ्गधर संहिता, भैषज्य, रत्नावली चरक संहिता, रसेन्द्रसार संग्रह आदि-आदि ग्रन्थों को देख कर निर्मित कर सकते है। जो ऊपरी निर्माण की हुई थीं वे यथा-स्थान अंकित कर दी गई हैं।

डाक्टरी चिकित्सा–

इसमें अनेक दवायें देते हैं परन्तु उत्तम दवा 'काडलिवर ऑयल' है। रोग मिट जाने की दशा में इसका देना हितकर है।

८६—'काडलीवर औयल' को १ ड्राम से लेकर १ औंस तक दूध के साथ दें।

८७—पहिले पहल चिरायते का काढ़ा या "टिंचर स्टील" देना अच्छा है।

८८—कफ को पतला करने के लिए पोटास आइयोडाइड बलानुसार दें।

८९—कफ को निकालने के लिये-"ईपिकाकुआना" उचित मात्रा में दें।

९०—कफ को दूर करने के लिये उचित मात्रा में—
टिंचर इपीकाक Tr. Ipecaucuhana
टिंचर डिजीटेलिस Tr. Digitelis.
कैफीन साइट्रास Caffiene Citras.

'सत कुचिला" [एकस्ट्रैकट नक्स वोमिका या "स्ट्रिनाइन" Ext. Nux Vomica या Strychnine] दें।

'ऐमोनियम कार्ब' भी कफ को दूर करने में दिया जाता है।

९१—अत्यन्त दुर्बलता में-ब्रांडी शराब का उपयोग करते हैं। और

६२–"मार्फिया"–का इन्जैक्शन भी करते हैं। इससे पीड़ा शान्त होती है।

६३–निमोनिया में इन्जैक्शन–

कर्पूर का तेल १५ बूंद मसल्स [मांसपेशी] में नित्य १ बार दिया जाता है और वह अच्छा लाभ करता है।

औषधि बनाने की विधि–शुद्ध जैतून का तेल २० बूंद लेकर किसी कांच की नली में देकर धीमी आंच [स्प्रिट लैम्प] पर रख दें। जब गर्म हो जाय तब शुद्ध कपूर ४ रत्ती उसमें दे दें। जब कपूर गलकर मिल जाय, तब ठंडा करके सुई द्वारा औषधि का प्रयोग करें। यह औषधि निमोनिया, वात वेदना, शीतांग, हैजा और प्लेग में भी प्रयोग की जाती है, तथा सन्तोषजनक लाभ भी दिखाई देता है।

प्रलाप, मूर्च्छा, तृषा, अनिद्रा आदि उपद्रवों पर–

६४–कर्पूरजल, लेवेंडर वाटर [Lavender water] ओडी कोलन [Eau-decologne] इनमें से किसी एक में जल मिला कर मस्तक पर पट्टी देने से सन्तोष जनक लाभ होता है। या बर्फ की टोपी देने से भी फायदा होता है।

छाती के दर्द पर–

एंटीफ्लोजिस्टीन [Anti-phlogistin] वा थर्माफ्युज [Thermafuse] आदि औषधियों का लेप चढ़ाया करते हैं–और लाभ भी उत्तम होता है। इनका मूल्य कुछ अधिक है।

ऐंटी फ्लोजिस्टिन लेप की विधि–

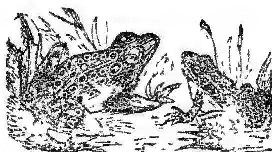
अङ्गीठी या स्टोव पर एक पात्र में जल को गरम करें। उस जल में एन्टीफ्लोजिस्टिन का डिब्बा खोल कर रखदें। जल डिब्बे से कुछ नीचा ही रहे उसके अन्दर न जाने पावे दवा गरम होकर पतली हो जायगी। तब एक फलालैन का टुकड़ा छाती की बीच की हड्डी से, पीठ के बीच की हड्डी तक का नाप कर काट ले। दोनों फेफड़े रोगाक्रांत हों तो समस्त छाती का घेरा बनाकर काट ले। उस कपड़े को तख्ते पर फैला कर उस पर चाकू या लकड़ी से—गरम एन्टिफ्लोजिस्टिन फैलादें। इतना मोटा पर्त जमावे कि वह २ जौ की मोटाई जितना मोटा हो। अब इस पलस्तर को गुनगुना ही छाती और पीठ पर चिपकावें–पर छाती के बीच की हड्डी [उरोस्थि] अवश्य खुली रहे जिससे श्वास में बाधक न हो। यह पलस्तर धीमा धीमा सेक और स्निग्धता पहुंचा कर फुफ्फुस का शोथ आराम करता है। २४ घण्टे बाद पलस्तर बदल दें। साधारणतः २-४ पलस्तर बदलने काफी होते है। यह औषधि विदेशी आती है। इसी प्रकार की उत्तम देशी औषधि–"ऐंटी कंजैस्टिन और 'अल्सीटिंन' आती है। ये कोई भी न मिले तो–

६४–अलसी (तीसी) कपूर केशर

–पीस कर कुछ गरम करके लेप करें। ३-४ घण्टे के अन्तर से बदलते रहे। यह भी अत्युत्तम है।

पाश्चात्य चिकित्सा में हृदय को बल देने वाली, 'डिजीटेलीस" उत्तम औषधि है। कोई २ चिकित्सक ऐसी हालत में ब्रांडी देते हैं। कोई २ "स्ट्रिकनिया" प्रभृति उत्तेजक औषधियां भी देते हैं। और कोई "ओक्सीजन" सुंघाते हैं।

इसमें भी हृदय की निर्बलता का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। इससे डाक्टरी चिकित्सा जब कभी किसी रोगी की की जावे, तो उस निमोनिया में जहां तक मिल सके अच्छे से अच्छे डाक्टर की ही चिकित्सा कराना चाहिये।



श्वास रोग चिकित्सा



लेखक—
गोकुलप्रसाद स्वर्णकार, प्रजावैद्य।

※ श्री धन्वन्तरयेनमः ※

श्वास रोग चिकित्सा



लेखक:—

गोकुलप्रसाद स्वर्णकार मजावैद्य

मुकाम-पोस्ट घाटमपुर कानपुर



सम्पादक व प्रकाशकः—

चि० चू० पं० विश्वेश्वरदयालु जी वैद्यराज

बरालोकपुर–इटावा



चतुर्थवार  सन् १९३४ ई०  कीमत

१००० ।) आना

चि० चू० पं० विश्वेश्वरदयालु जी द्विवेदी के प्रबन्ध से
श्री हरिहर प्रेस, बरालोकपुर में मुद्रित।

दो शब्द

यह बात प्रकाशित करते हुये मुझे प्रसन्नता है कि विद्वान् वैद्य निष्कपट भाव से देश-सेवा करने के लिये तैयार हो रहे हैं और अपने-अपने अनुभव सहर्ष बताने की उत्तम [illegible] लगे हैं यद्यपि—"श्वास निबन्ध" प्रथम प्रकाशित हो ही गया था परन्तु चिकित्सा-प्रणाली उसमें इतनी रोचकता से न आ सकी थी इसी कारण से चौथी बार इसे छपवाना पड़ा है इस ग्रन्थ के लिये लेखक की प्रतिज्ञा यह है। (कि जो औषधियां मैंने इस निबन्ध में प्रकट की हैं वह मेरी सब अनुभूत हैं मैं स्वयं इस रोग में कुछ काल ग्रसित रहा हूँ इस लिये जिस २ प्रकार मैं उससे मुक्त हुआ हूँ सब इसमें लिख दिया है इसके द्वारा वैद्यजन क्रिया करने पर अवश्य सफल प्रयत्न होंगे) इस बात को मैं पूर्णरूप से कह सकता हूँ कि यह "श्वास चिकित्सा" प्रणाली ग्रन्थ को पास रख वैद्यजन अवश्य श्वास रोग पर जय लाभ कर सकते हैं। आशा है वैद्यजन इसे अपनावेंगे।

आवेदयति—

विनयानतो भिषग्वरानुगृहीतः

वैद्य[illegible]:

❀ श्रीगणेशायनमः ❀

श्वासरोग चिकित्सा

इस समय भारतवर्ष के [illegible] स्थानों मे 'श्वास' रोग की शिकायत सुनने में आती है। [illegible] होने पर अत्यन्त भयानक हो जाते हैं [illegible] यह श्वास रोग भी है। यदि मनुष्य के शरीर का संगठन बहुत अच्छा हो किन्तु उसके शरीर में निर्बलता के कारण श्वास रोग हो गया हो तो उसे कमजोर नीव वाले मकान के समान समझना चाहिये।

मनुष्य का जीवन एक मात्र श्वास ही पर अवलम्बित है कोई यह नहीं कह सकता कि कब उसकी गति रुक जाय और साथ ही जीवन लीला भी समाप्त हो जाय। अस्तु ? इस शरीर में श्वास ही प्रधान तत्व है।

मनुष्य जब खान-पान का यथार्थ संयम नहीं करता। मिथ्या आहार-विहार का व्यवहार करता है तो वातादि दोष कुपित होकर अनेक संक्रामक रोगों को उत्पन्न कर देते है। इस प्रकार के संक्रामक रोगो को उत्पन्न कर देते है। इस प्रकार के संक्रामक रोगो की जैसी अधिकता आजकल भारतवर्ष में देखी जाती है उससे यही प्रमाणित होता है कि ज्यो-ज्यो स्वेच्छा-चारिता बढ़ती गई त्यो-त्यों आहार-विहार में भी बल पड़ता गया

एवम् रोग भी एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता गया। कुछ तो पैतृक सम्पत्ति के कारण इस रोग का बीज अंकुरित होता गया और कुछ सक्रामक होने के कारण अन्य शरीर संसर्गादि दोषों से बढ़ता गया। कहना नहीं होगा कि वह नैरोग्य विशुद्ध भारत आज दिन प्राचीन ऋषियों की आज्ञा प्रणाली पर न चलकर ही इस अधोगति की दशा को प्राप्त हुआ है।

इस समय प्रायः रोगी श्वास ही के पाये जाते हैं अनुसंधान करने पर यह मालूम हुआ है कि यह रोग कुछ ही दिन में विशेष रूप से बढ़ने लगा है। यही कारण है कि चिकित्सक भी घबड़ा कर हताश हो जाते हैं।

जिस द्विविधात्मक (दो दोष वाले) त्रिविधात्मक (तीन दोष वाले) रोगों का वर्णन तथा उन तीनों दोषों के प्रकुपित होने वाले हेतुओं का वर्णन हो चुकने पर महर्षि अग्निवेश ने हाथ जोड़ कर भगवान आत्रेय से पूछा, हे भगवान्! मैं यह जानना चाहता हूं कि इन अनेक प्रकार के रोगों में कौन २ दुजर हैं? महर्षि आत्रेय जी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा, 'यद्यपि प्राणनाश करने वाले अनेक रोग हैं तथापि वे ऐसे नहीं होते जैसे कि हिक्का और श्वास होते हैं और अन्त्यावस्था में प्रायः इन्हीं रोगों के प्रकोप से मृत्यु होती देखी जाती है।

इसमें संदेह नहीं। भावमिश्र भी इसका अनुमोदन यों करते हैं—

यैरेव कारणैर्हिक्का देहिनां सम्प्रवर्तते ।
तैरेव बहुभिः श्वासो व्याधिर्घोरः प्रजायते ॥

अर्थात्—जिन कारणों से प्राणियों को हिचकी का रोग होता है, प्रायः उन्हीं कारणों से घोर श्वास का रोग होता है।

श्वास का पूर्व रूप

अनाहः पार्श्व शूलञ्च पीडनं हृदयस्य च ।
प्राणस्य च विलोमत्वं श्वासानाम पूर्व लक्षणम् ॥
(चरक)

अनाह (पेट फूलना) पार्श्वशूल, हृदय, पीड़ा, प्राण वायु का उलटा फिरना यह सब श्वास का पूर्व रूप है जिसका अनुमोदन भावमिश्र जी भी करते हैं—

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मान मेव च ।
आनाहो वक्त्रवैरस्यम् शङ्खनिस्तोद एव च ॥

अर्थात्—हृदय दुखे, शूल हो, अफरा, हो, पेट तन जाय, कनपटी दुखे, और मुख फीका रहे इत्यादि ये सब श्वास रोग के पूर्व लक्षण हैं।

श्वास रोग की उत्पत्ति।

हृदिस्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफ पूर्वकः ।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान्करोतिसः ॥

अर्थात्—जब कफ से मिली हुई वायु प्राणवाही स्रोतों को रोक देती है, तब इस तरह रुकी हुई वायु सम्पूर्ण देह में गमन करता है और श्वास रोग उत्पन्न होता है।

श्वास के भेद

महोर्ध्वच्छिन्नतमक क्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा ।

भिद्यते समहाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥

अर्थात्—महा श्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास तमकश्वास और क्षुद्रश्वास, इन भेदो से श्वास रोग ५ प्रकार का है। प्रतमकश्वास तथा सन्तमकश्वास तमकश्वास के अन्तर्गत है।

महाफल की निरुक्ति

तत्फला विविधावताः फलन्तीति महाफलाः ।

अर्थ—तत्फला फलन्तीति महाफला विविधा वा फलन्तीति ताः महाफलाः ये सब महत नामक ओज से निकलती हैं इस लिये धमनियों को महाफल कहते हैं अथवा ये विविध प्रकार के कार्य करती हैं इससे यह महाफला कहलाती है।

महाश्वासादि की उत्पत्ति इन्हीं महा फल नामक श्रोतों के दूषित होने से होती हैं।

जिन धमनियो के दूषित होने से महाश्वासादि की उत्पति होती है, उनकी निरुक्ति यों हैं—

चंचलता के कारण इन्हें धमनी कहते हैं। इनमें से रस रक्तादि बहा करते हैं, इस लिये इन्हें श्रोत कहते हैं और इनके द्वारा रुधिर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है, इस लिये इन्हें शिरा भी कहते हैं।

इनके दूषित होने के लक्षण

श्वास का वेग से निकलना तथा कुपित होना, रुक जाना थोड़ा निकलना, बार २ निकलना, शब्द [illegible] अथवा [illegible] होना इत्यादि लक्षणों से युक्त श्वास को मनुष्य का प्राणवाही स्रोत दूषित समझना चाहिये।

प्राणवाही श्रोतों के दूषित होने के कारण

क्षय से, वेगों के धारण करने से, अत्यन्त व्यायाम करने से, क्षुधा और तृषा के रोकने से तथा और भी अन्य दारुण कारणों से प्राणवाही श्रोत दूषित हो जाते हैं।

प्राणवाही श्रोतो की चिकित्सा श्वासनाशक औषधि द्वारा करनी चाहिये।

वायु की महत्ता

वायु ही देहधारियों की आयु है, तथा सम्पूर्ण विश्व है और वायु ही प्रभु वर्णन किया गया है। जिस मनुष्य के देह में वायु की अव्याहत (अदूषित) गति है और वह अपने स्थानों में स्थित रह कर प्रकृतिस्थ है तो वह मनुष्य निरोग रहकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। यही वायु कुपित होकर जब प्राण-वाही श्रोतों में प्रवेश करती है, तब वह श्वास और प्रति-श्याय (जुकाम) रोग को उत्पन्न करती है।

महा श्वास का लक्षण

वायु के ऊपर जाने से संरुद्ध होकर जो मनुष्य बैल की तरह अत्यन्त कष्ट से शब्द युक्त ऊंचा श्वास लेता है तब उसके ज्ञान-विज्ञान नष्ट हो जाते हैं, नेत्र भ्रांति युक्त हो जाते है। आंखें और मुख विकृत हो जाता है, मल मूत्र बन्द हो जाता है वाणी रुकजाती है दीनता बढ जाती है। उसका श्वास लेना दूर ही से सुन पड़ता है और रोगी शीघ्र मर जाता है।

उर्ध्व श्वास का लक्षण

जो मनुष्य ऊपर को मुंह करके दीर्घ श्वास लेता है और नीचा मुंह करके भीतर को नहीं खींच सकता उसके मुख श्रोत कफ से घिर जाते हैं और उससे कुपित दुर्गन्धित वायु निकलती है जो ऊपर को दृष्टि करके भ्रांत युक्त नेत्रों से देखता है वेदना से व्याकुल होकर मुग्ध हो जाता है। मुख सूख जाता है, वेदना बढ़ने लगती है, तो उसमें उर्ध्वश्वास के प्रवृत्ति होने पर अधः-श्वास रुक जाता है। इसमें अत्यन्त कष्ट होता है और शीघ्र ही प्राणघातक हो जाता है।

छिन्न श्वास के लक्षण

जिस मनुष्य का टूटा हुआ श्वास निकलता है और उसके कारण समस्त शरीर में कष्ट होता है अथवा उस कष्ट के कारण ही श्वास कम निकलता है तथा मर्म-स्थान में भी वेदना होने लगती है जिससे आनाह, स्वेद और मूर्छा हो जाती है,

बस्ति में जलन पैदा होनें लगती है, नेत्रों में पानी भर जाता है। कमजोरी बढ़ती जाती है नेत्र लाल पड़ जाते हैं, संज्ञा नष्ट हो जाती है मुख सूख जाता है, देह का वर्ण बिगड़ जाता है, प्रलाप होता है, इत्यादि छिन्न श्वास के लक्षण हैं। इस रोग से पीड़ित मनुष्य शीघ्र प्राणों को त्याग देता है।

इन तीनो श्वासों के लक्षण पढ़ने से तथा देखने और अनुमान करने से मालूम होता है कि महा श्वास में वात की, ऊर्ध्व श्वास में कफ की, और छिन्न श्वास में कफ और वात की प्रधानता रहती है।

तमक श्वास के लक्षण

जब वायु प्रतिलाम अर्थात उलटी होकर प्राणवाही श्रोतों में ठहर जाती है तब वह ग्रीवा और मस्तक को जकड़ कर वृद्धि द्वारा पीनस उत्पन्न कर देती है और स्वयं रुद्ध होकर कण्ठ में घुरघुराहट पैदा कर देती है। उस समय प्राणों को कष्ट देने वाला और बड़े तीव्र शब्द वाला श्वास उत्पन्न होता है इसके उत्पन्न होने पर अत्यन्त वेग से खासने लगता है। खांसते २ कंठ रुक सा जाता है और रोगी बार २ मूर्च्छित हो जाता है। कफ के न निकलने से रोगी अत्यन्त क्लेश में आपातत हो जाता है। थोड़ा सा भी कफ निकलने पर रोगी को आराम सा मालूम पड़ता है। गले में धुआं सा मालूम पड़ता है, इससे वह रोगी कठिनता से बातचीत कर सकता है। सोने में श्वास का वेग अधिक हो जाता

है, जिससे उसे अधिक निद्रा भी नहीं आती और करवट भी नहीं लिया जाता क्योंकि इससे श्वास का वेग अधिक बढ़ता है, किंतु चित्त सोने पर वह श्वास सुगमता से आ-जा सकती है। बैठे रहने से कुछ आराम सा मिलता है। वायु शमन के हेतु उसकी प्रकृति उष्ण स्निग्ध पदार्थों की इच्छा करती है। श्वास खींचते २ आंखे फटी सी हो जाती है, मस्तक में पसीना तथा वेदना अधिक होने लगता है। मुख सूख जाता है. बार २ श्वास बढ़ता रहता है और शरीर भर में भारीपन मालूम होने लगता है, बदली में शीत जल के स्पर्श करने पर. पूर्वी हवा के चलने से, और कफकारी द्रव्यों के सेवन करने से। श्वास की वृद्धि होती है। यह तमक श्वास कष्टसाध्य है यदि नया हो तो साध्य भी होता है।

प्रतमक श्वास का लक्षण

यदि तमक श्वास में रोगी को ज्वर और मूर्च्छा हो तो उसे प्रतमक श्वास कहते हैं।

सन्तमक श्वास का लक्षण

उदावर्त रज तथा अजीर्ण द्वारा देह के क्लिन्न होने से या जठराग्नि के विरोध से जो श्वास होता है तथा जो अंधकार से विशेष बढ़ता है, शीतोपचार से शांत होता है।

रोगी का अंधेरा सा छाया हुआ दिखलाई पड़े तो इस श्वास को सन्तमक श्वास कहते हैं।

क्षुद्रश्वास का लक्षण

रुक्ष पदार्थों के सेवन करने से, श्रम करने से प्रगट हुइ जो क्षुद्र नामक श्वास है यह पवन को ऊपर ले जाता है। यह क्षुद्र श्वास ऊपर कहे हुये श्वासों की तरह दुखदायक नहीं है। तथा अंगों को कुछ विकार नहीं करता। इसमें भोजन-पानादि की गति तथा इन्द्रियों के कार्य रुक नहीं रहते। यह क्षुद्रश्वास साध्य है।

हिकमत यूनानी के देखने से यह बोध होता है कि यह बीमारी फेफड़ों की बीमारी है और फेफड़े की खराबी से उत्पन्न होती है। डाक्टर भी इसी का समर्थन करते हैं। महा श्वासादि जो ऊपर कह आयेहैं और जो मनुष्य के मृत्यु के कारण होते हैं, उनके निदान इनके ग्रन्थो में नहीं पाये जाते हैं। किंतु जिन उपचारों से वैद्यक शास्त्रवेत्ताओंने इनके दूर करने की युक्तियां बतलाइ हैं उन्हीं उपचारोंकी युक्तिया इन लोगोंमें भी पाइ जातीहैं।

हिकमत यूनानी यों कहता है कि फेफड़ा एक प्रकार की झिल्ली है, जो वायु को साफ करके कल्ब यानी दिल को पहुंचाता है। यदि फेफड़े में एक ओर विकार उत्पन्न हो तो दूसरा फेफड़ा साफ हवा पहुँचाने में उसको सहायता देता है।

परन्तु वैद्यक शास्त्रानुसार श्वासवाही स्रोतों के दूषित होने से ही श्वास की उत्पत्ति होती है।

अत एव हमारे निदान से विदेशीय या डाक्टरी निदान कुछ २ मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि जहां तक उन लोगों की पहुँच हुई वहां तक आयुर्वेद शास्त्र से ही लेकर उन लोगों ने भी इस रोग के निदान को पुष्ट किया है।

उपचार

श्वास पीड़ित मनुष्य को प्रथम स्निग्ध करके स्वेदन करे अर्थात् लवण युक्त तैल द्वारा उसे मलकर नालकादि यन्त्र द्वारा स्वेदन करे जिससे पसीना निकले। ऐसा करने से रोगी के श्रोत समूह में इकट्ठा हुआ कफ पिघल जाता है तब सम्पूर्ण श्रोत मुलायम पड़ जाते हैं और वायु अनुलोमगामी (ठीक अपने मार्ग पर चलने वाली) हो जाती है। जिस प्रकार पहाड़ की गुफाओं में जमा हुआ बर्फ सूर्यकी तीव्र किरणों से पिघल जाता है उसी प्रकार शरीर के श्रोतों में जमा हुआ कफ भी स्वेदन कर्म से पिघल जाता है। कफ की विशेषता में रुक्ष पदार्थों द्वारा स्वेदन हितकारी है। कफ भेद युक्त वादी के रोगों में स्निग्ध तथा रुक्ष दोनों पदार्थों द्वारा स्वेदन करे। स्वेदन-क्रिया शार्ङ्गधरकी बहुत ही सरल तथा उत्तमहै।

बालुका स्वेद कफ विकार पर और वायु कफ पर भस्म संज्ञक स्वेदनविधि करना चाहिये। जिससे आवश्यक लाभ होता है। रोगी को किंचित् लवण युक्त तिल के तेल से मालिश करनी

चाहिये और निर्वात स्थान में बालू की बड़ी पोटलियों द्वारा तवा पर गरम करके सेक करे। बाद में कम्बल ओढ़ाकर कुछ देर तक रोगी को लिटा रखने से स्वेद होता है। कम्बल ओढ़े हुये रोगी को भी कम्बल के नीचे २ सेक कराना चाहिये।

दूसरी क्रिया यह है कि दशमूलादि वात नाशक औषधियों को एक छटांक लेकर पांच सेर पानी में डाल कर पकावें। औषधि के पक जाने पर आग से उतार कर दूसरे घड़ा में जिसके कि कटि भाग में एक छिद्र द्वारा नली हो, वह नली हाथी के सूंड़ के आकार की हो और बीच में पेंच द्वारा बन्द रक्खे, डाल देवे और उसमें दो रुपये भर हल्दी चूर्ण कर देवे और उस घड़े का मुंह हांडी रखकर सने हुये आटे से लेप देवे। रोगी को बिछावन वाली चौकी या चारपाई पर लिटाकर मुख के अतिरिक्त शरीर को मोटे कपड़े या कम्बल से ढाक दे और सुहानी-सुहानी भाप नली द्वारा घुमा-घुमा कर पृष्ठ, पार्श्व तथा कटिभागों में विशेष रूप से स्वेद देकर पश्चात् सम्पूर्ण शरीर में देवे। स्मरण रहे कि भाप मुख पर न लगने पाये यदि भाप तेज हो और रोगी को न बरदाश्त हो सके तो रोगी को एक मोटी चादर ओढ़ा दे और उसके ऊपर से उक्त क्रिया करे। यह स्वेद रोग पीड़ित को बैठाकर भी की जा सकती है।

जब विधिपूर्वक स्वेदन क्रिया समाप्त हो जाय तो शीघ्र ही रोगी को स्निग्ध भोजन करना चाहिये, जिससे दोष ऊपर को उमड़ आये। दूसरे दिन प्रातः काल बढ़े हुये कफ को निकालने के

लिये वमन कारक औषधियों को पान कराये। वमन होने पर बिगड़े हुये कफ के निकल जाने से रोगी को सुख बोध होगा और वायु भी शुद्ध श्रोतों में बिना व्यवधान के विचरने लगेगा।

स्वेद के अयोग्य रोगी

पित्त, दाह, रक्त, स्वेद, क्षीणधातु, क्षीणबल, कृश, गर्भिणी इत्यादि रोगियों को स्वेदन क्रिया न करनी चाहिये।

वमनकारक औषधि

पीपल छोटी ३ मा०, मैनफल के बीज ६ मा०, सैंधव लवण ६ मा०, शहद १ तो०, इन सबको सिल पर बारीक पीस ले और रोगी को पिलादे। इससे थोड़ी देर बाद आप ही आप वमन होने लगेगी। यदि रोगी क्षीण हो तो उसे ये औषधियां कुछ कम मात्रा से देना चाहिये। यदि रोगी को वमन करने में कुछ कष्ट उत्पन्न हो जाये तो मिश्री और अनार दानों के शर्बत से उसको शान्ति कर देनी चाहिये।

हकीमों और डाक्टरों की भी राय है कि श्वास के रोगियों को वमन कराना चाहिये परन्तु वे लोग भी क्षीण रोगियों को हम लोगों की तरह वमन नहीं कराते।

वमन के अयोग्य रोगी

बालक, वृद्ध, क्षीण, सुकुमार, डरपोक इत्यादि मनुष्यों को वमन निषिद्ध है। वमन हो जाने के बाद घृतयुक्त मूंग की खिचड़ी तथा यवागू देनी चाहिये।

चाहिये और निर्वात् स्थान में बालू कड़ा पोटलियों द्वारा तव गरम करके सेंक करे। बाद को कम्बल ओढ़ाकर कुछ देर तक रोगी को लिटा रखने से [illegible] है। कम्बल ओढ़े हुए रोगी को भी कम्मल के नीचे २ सेक कराना चाहिये।

दूसरी क्रिया यह है कि दशमूलादि वात नाशक औषधियों को एक छटांक लेकर पांच सेर पानी में [illegible] [illegible]। [illegible] के [illegible] जाने पर [illegible] से उतार कर दूसरे घड़े में जिसके कि [illegible] भाग में एक छिद्र द्वारा नली हो, वह नली हाथी के सूंड़ के आकार की हो और बीच से पेच द्वारा घूम सके, [illegible] देवें और उस में दो रुपये भर [illegible] फूंक कर देवे और उस घड़े का मुंह हाथी रख कर सने हुये आटे से लेस देवे। रोगी को बिछावन वाली चौकी या चार-पाई पर लिटाकर मुख को छोड़ शरीर को मोटे कपड़े या कम्बल से ढांक दे और सुहाती-सुहाती भाप नली द्वारा घुमा-घुमा कर पृष्ठ, पार्श्व तथा कटि भागों में विशेष रूप से देकर पश्चात् सम्पूर्ण शरीर में देवे। स्मरण रहे कि भाप मुख पर न लगने पावे यदि भाप तेज हो और रोगी को न बरदाश्त हो सके तो रोगी को एक मोटी चादर ओढ़ा दे और उसके ऊपर से उक्त क्रिया करे। यह स्वेदन रोग पीड़ित को [illegible] भी की जा सकती है।

जब [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रोगी को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुये [illegible] [illegible] [illegible]

लिये वमन कारक औषधियों का पान करावे। वमन होने पर बिगड़े हुये कफ के निकल जाने से रोगी को सुख बोध होगा और वायु भी शुद्ध स्रोतों में बिना व्यवधान के विचरने लगेगा।

स्वेद के अयोग्य रोगी

पित्त, दाह, रक्त, स्वेद, क्षीणधातु, क्षीणबल, रूक्ष, गर्भिणी इत्यादि रोगियों को स्वेदन क्रिया न करनी चाहिये।

वमनकारक औषधि

पीपल छोटी २ मा०, मैनफल के बीज ६ मा०, सैंधव लवण ६ मा०, शहद १ तो०, इन सबको सिल पर बारीक पीस ले और रोगी को पिलावे। इससे थोड़ी देर बाद आप ही आप वमन होने लगेगी। यदि रोगी क्षीण हो तो उसे ये औषधियां कुछ कम मात्रा से देनी चाहिये यदि रोगी को वमन करने से कुछ कष्ट उत्पन्न हो जाये तो मिश्री और अनार दाने के शर्बत से उसको शान्ति कर देनी चाहिये।

हकीमों और डाक्टरों की भी राय है कि श्वास के रोगियों को वमन करानी चाहिये परन्तु वे लोग भी क्षीण रोगियों को हम लोगों की तरह वमन नहीं कराते।

वमन के अयोग्य रोगी

बालक, वृद्ध, क्षीण, सुकुमार, डरपोक इत्यादि मनुष्यों को वमन निषिद्ध है। वमन हो जाने के बाद घृतयुक्त मूंग की खिचड़ी तथा यवागू देनी चाहिये।

अर्क दूसरा

गुलाब केवड़े का अर्क [illegible] पाव, सुगन्धबाला ६ मा०, अगर ६ मा०, शा[illegible]ज [illegible] इन औषधियों को बारीक पीस कर अर्क म [illegible] लगा कर रक्खे।

[illegible] सुरती के (डेढ़ पाव) पत्तों को किसी चीनी के [illegible] बरतन में रखकर अर्क नम्बर २ से जिसमें [illegible] पड़ा है छिड़क २ कर तर करे।

तदनन्तर उसे किसी टीन के पटरे पर फैलाकर रात भर छाया में सूखने दे सुबह फिर इसी तरह नं० १ वाले अर्क द्वारा सुरती के पत्तों को तर करे तथा भली भांति उलट पलट कर किसी दूसरे साफ पात्र में ढक कर रात भर पड़ा रहने दे। ऐसा करने से सुगन्ध खूब भिद जायगी पश्चात् प्रातः ढक्कन को उस पर से हटा पत्तों को साये में सुखावे। बाद कचनार द्रुम के बड़े २ पत्तों को मंगाकर के एक में दो कर ले और सिद्ध किये हुये सुरती के पत्तों को छोटे २ कंधा ले टुकड़े काट करके कचनार के पत्तों को लपेट कर सूत से बांध कर छांह में सुखाकर रक्खे या जिस तरह बाजारू बीड़ी बनती है, उसी तरह इस सुरती से तेंदू के पत्ते में बीड़ी बनवा ले। इसे प्रातः-साय तथा रात्रि में सोने के समय नियम पूर्वक तथा बीच २ में जब श्वास उमड़े बीड़ी की तरह पीना चाहिये।

मनुष्य बलाबल के अनुसार एक बार में एक बीड़ी से तीन बीड़ी तक भी पी सकता है। इससे बढ़ा हुआ श्वास बैठ

जाता है, कफ भी ढीला होकर निकलने लगता है, पसुली की पीड़ा, सीने से तनाव, पेट का भारी पन जाता रहता है, भूख लगती है, दस्त साफ होता है तथा शीतकाल में स्वस्थ्य मनुष्य के लिये यह बीड़ी बड़ी ही गुणप्रद तथा प्रिय पाई गई है। बीड़ा इत्यादि बनने की असुगमता पर इस सिद्ध की हुई सुरती को थोड़ी सी चिलम पर भी रखकर गौरिया (नली) द्वारा पी सकते हैं।

सेवन करने के लिये औषधि

मैनसिल का मारा हुआ उत्तम पचास आंचका लौह आधी रत्ती से एक रत्ती तक, २ रत्ती त्रिकुटा (सोंठ, पीपर, मिर्च) युक्त उत्तम मधु के साथ या शरवत खशखाश का बनफसा के साथ दोनों समय सेवन करें।

अथवा

स्वर्ण सिंदूर रस की रत्ती लेकर स्वच्छ चिकने पत्थर पर जरा सा गुलाब जल देकर रगड़े। जब चार तीन-चार रत्ती रस का घिसन उतर आवे तब उसे किसी शीशे या चांदी के पात्र में रख, डेढ़ छटांक अरक गुलाब जल मिला कर घोले। पश्चात् इसी अर्क को एक-एक चम्मच करके आध घंटे या एक घंटे बाद पर जैसा जिस समय हो पिलाकर रोगी को पिलावें।

इससे रक्त का कारण रुका हुआ है। नीचे को हवा ने लगता है तथा सम्पूर्ण उपद्रव जैसा कंठ का सूखना तृषा, का लगना, पार्श्व पीड़ा इत्यादि कम होने लगते हैं तथा रोगी की

दशा बहुत कुछ सुधरने लगती है। स्मरण रहे कि बालोलरण श्वास रोग में रूक्षोष्ण औषध कदापि न करें। उपरोक्त औषध के साथ सेवन करने के लिये—

एलादि गुटिका

छोटी इलायची के दाने, तेजपात, दालचीनी छः-छः माशे छोटी पीपल २ तो०, मुलहठी, मिश्री, मुनक्का, पिंड खजूर, कमाये छुहारा १-१ छटांक, मधु [illegible] मुनक्का और छुहारे के बीज [illegible] औषधियों को कूट छान [illegible] जब सब एक [illegible] बेर गोली [illegible] ७-८ गोली तक चूसना चाहिये।

दूसरी विधि [illegible] सायं १-२ तो० खमीरा का सेवन [illegible]। इसके सेवन से उग्रतर श्वास, खांसी, हिचकी, [illegible] प्यास, दाह, [illegible] इत्यादि दूर होते हैं [illegible]

घृत

[illegible]

निकलने [illegible]

घृत २ तो० [illegible]

सांभर नमक महीन बुका हुआ मिलाकर खूब फेंटे बाद को इस घृत को उपरोक्त स्थान पर मालिश करे।

ऊर्ध्वश्वास की चिकित्सा

इसमें प्राय: कफ नाशक औषधि देवे औषधियों को चाट कर बाद में इस जल को पिलाकर वमन कराये। अगर रोगी बलवान हो तो उसे १॥ सेर गरम पानी में त्रिकुटा ६ मा०, सैंधव लवण ६ मा०, मुलहठी १ तो० मिलादें यदि रोगी वमन करने के लिये असमर्थ है तो यह उपाय करे।

सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधानमक १-१ तो० फिटकरी ६ मा० इन सब औषधियों को अदरख के रस में घोटकर धूप में सुखाये। बाद को इस चूर्ण को १-१ चुटकी रोगी के मुख में डाले और रोगी उसे अपने दांतों द्वारा दबा २ कर थूक दे। ऐसा २-३ बार के करने से जिह्वा, कण्ठ, नासिका तथा मस्तक का जमा हुआ कफ पतला होकर निकलने लगता है। बाद को गरम जल से कुल्ला करवा कर इस औषधि को दे।

त्रिकुटा ३ मा०, सिंगरफ से फूका हुआ उत्तम लोहभस्म १ रत्ती, मधु में मिलाकर चटाये, ऊपर से त्रिकुटा का क्वाथ शहद डालकर पिलाये। अथवा यदि रोगी को कब्ज हो और दवा करनी हो तो त्रिफला १ तो०, त्रिकुटा ६ मा०, अरूसा पत्ती ६ मा०, शहद डालकर पिलाये।

यदि इन औषधियों से श्वास न शमन हो और कफ की विशेषता रहे तो ताम्रेश्वर रस आधी से १ रत्ती अदरख रस मधु

युक्त दें या त्रिकुटा ४ रत्ती मधु के साथ दें। श्वासकुठार रस इसमें बहुत उपयोगी पाया गया है।

ताम्रेश्वर रस विधि

नेपाली तांबा का पत्र तैल, तक्र में शुद्ध करके छोटे २ टुकड़े कराले। शुद्ध पारा १ तो०, शुद्ध आंवलासार गंधक २ तो० दोनों की कज्जली करले बाद जम्बारी के रस मे घोटकर गाढ़ा २ ताम्र टुकड़ों पर लेप कर धूप में सुखाले बाद शराव संपुट में रख कर कपड़मिट्टी करउपलों की तीक्ष्ण गजपुट की आंच में फूंक दे इसी तरह सात आंच देने से ताम्रेश्वर रस सिद्ध होता है। विशेष कफ के विकार पर—

ताम्रभैरव रस

सिङ्गिया शुद्ध, कत्था श्वेत, अकरकरा, खील सुहागा, सोंठ पीपल, मिर्च, शुद्ध ताम्रेश्वर भस्म, शुद्ध अफीम (अहिफेन) सम भाग जल द्वारा घोट कर गुञ्जा प्रमाण गोली बनाले। इसे कफ की विशेषता तथा ऊर्ध्व श्वास मे मधु के साथ प्रातः सायं दे स्मरण रहे कि कब्ज वाले रोगी को इस वटी का सेवन सर्वथा हानि कारक है।

छिन्नश्वास की चिकित्सा

इसमें प्रायः कफ वायु नाशक अर्थात् शमनकर्ता वायु नाशक औषधि दे।

औषधि

साफ की हुई हरी इमली की पत्ती २ तो० कूट कर हींग २ आना भर मिला आधसेर पानी में काढ़ा कर जब १ पाव पानी शेष रहे छान कर शीशी में रक्खे बाद इसे ८-८ आना भर दोनो समय पूरी अवस्था वाले रोगी को पिलाये।

दूसरी औषधि शृङ्गार अभ्र

पलद्वयमितं व्योमनिश्चन्द्रमथ मूर्च्छितम्। सूतोगंधं मृतायश्च प्रत्येकं निष्क सम्मित। कर्पूरं बालक मांसी कुङ्क केशरं तथा। तेजनी धातकी पुष्पं प्रत्येकं शाणमात्रक। व्योषफलत्रिकश्चाद्र्ं शाणमात्रं पृथक् पृथक॥ कुष्ट जातीचतालीसं गजपिप्पलिका पृथक्। निष्कत्रयमितैला च तावज्जाती फल स्मृतं एकीकृत्वाखिलं पिष्टवा जलेन वटिका तथा। कुर्यात्तच्चणका-कारां सततंप्रातरे वहि। सायंचतत्रः तदनु तांबूलंनागरान्वितं। भुक्तांतेतु पिवेत्तोयं तथेष्टं भोजनञ्च तत्। कुर्याच्च पिवेच्चानु गव्यं क्षीरं स शर्करं॥ शृङ्गाराभ्र मिद राज्ञो योग्यं पुष्टिकरं परम्। रेतः स्तम्भकर हृद्य कामिनी-वश कारकम्। अनेनक्षयमेहाश्च त्रिदोषजाश्चये गदाः सद्य एव प्रणश्यन्ति नानामेहमहागदाः॥

तीसरी औषधि

नागफनी सेंहुण मगवाकर ऊपर के कांटो तथा छिलको को छीलकर फेंक दे तथा गूदा को लेकर काट २ कर जो करीब एक पाव के हो नवीन मिट्टी के पात्र में रख ढाक कर आग पर रख हलकी आंच द्वारा पकाय जब पानी सूख जाये तब नीचे उतार ले बाद भली भांति धूप में सुखाकर रक्खे श्वास वाले रोगी को दो

आने भर से चार आने भर तक ५-६ दाना मिर्च के साथ पीस कर १॥ छटांक जल से घोलकर पिलाने से वातश्लेष्मिक श्वास वाले रोगी को अवश्य लाभ पहुंचाता है।

तमक श्वास की चिकित्सा

में वायु पित्तनाशक अर्थात् मधुर स्निग्ध पदार्थों से कुछ पथ्य दे। इसमें तीक्ष्णोष्ण तथा रूक्ष क्रिया कदापि न करे क्योंकि ऐसे उपायों से वायु वेगवान होकर कफ को सुखा देती है और निकलने में विशेष कष्ट होता है तथा अनेकानेक उपद्रव उत्पन्न होने लगते हैं। इसके वास्ते प्रथम ऐसे २ दृश्यों का कथ दवे जिससे कि जमा हुआ कफ ढीला होकर प्रवाहित होने लगे यदि कारण कफ से अर्थात् वायु कफ से दबी है तो खांसने पर कफ शीघ्र गिर पड़ेगा सीना तथा कण्ठ खुरखुराता रहेगा, ऐसी दशा में एक तोला मूली के बीज पीस कर छटा सेर गुन गुन पानी में डाल एक तोला शहद मिला कर कै कराना तथा रात में सोने के समय मृदु विरेचन खिलना श्रेष्ठ है, यदि कारण वायु से है और कफ पीछे है तो खांसने से कष्ट के साथ कफ देर में निकलेगा तो ऐसी दशा में लबाबदार चीजें शरबत तथा बनफशादि का काढ़ा श्रेष्ठ है। यदि छाती में कफ गर्मी, प्यास, कंठ सूखना तथा नासिका में धुआं ऐसा निकलता हो तो मधुर स्निग्ध तथा शीतल पदार्थों द्वारा उपचार करे। यदि बवासीर के कारण दस्त साफ न हो तो बवासीर नाशक विरेचन औषध का सेवन कराना परम श्रेष्ठ वायु शमनार्थ घी, मिश्री, गोलमिर्च बलाबल अनुसार रोगी को

प्रातः देना बहुत ही उपयोगी पाया गया है। श्वास में ज्वर हो तो बहुत रुक्ष गर्म दवाओं को न देकर प्रथम सुदर्शनादि चूर्ण के साथ आगे पीछे देता रहे तथा शीत प्रधान देश कफ की विशेषता पर उष्णोपचार युक्त अनुपान के साथ वैद्यवर कर सकते हैं।

औषधि

क्वाथ-गुलबनफशा ६ माशा, गुलगावजुवा ६ माशा, खतमी ३ मा०, मुलेठी ३ मा०, उन्नाव दाना ७, मुनक्का ७, इन सबको रात भर एक पाव पानी में भिगो दे, प्रातः आग पर क्वाथ करे जब शेष आधा जल रह जाय तो उतार कर छान ले बाद ठंडा होने पर दो तोला मिश्री डाल कर रोगी को पिलावे ऐसे ही सायंकाल मे भी करे। इससे कफ ढीला होकर निकलने लगेगा और श्वास का फूलना क्रमशः बन्द हो जावगा अगर रोगी का गरम मिजाज हो और कब्जियत रहती हो तो इस काढ़े को देवे।

क्वाथ

गुलबनफशा ६ मा०, मुलेठी ६ मा०, बिहीदाना ३ मा०, अनार मीठा १, मुनक्का ७ दाना को उपरोक्त रीत्यानुसार काढ़ा बना रोगी को देना चाहिये।

तथा—

खुश्की, प्यास और कण्ठ के सूखने में तोले भर अलसी के हिम में मिश्री मिलाकर देना तथा चोकर गेहूँ का १ तो०, आटा

६ मा० को १ पाव जल में क्वाथ करके शहद मिलाकर थोड़ा २ पिलाना परम लाभप्रद पाया गया है।

पुनः क्वाथ

मुनक्का १ छटांक, गोल मिर्च ७ दाना, मिश्री १ छटांक तीनों औषधियों को तीन पाव पानी मे काढ़ा करें जब आधा काढ़ा शेष रहे तो छान कर रोगी को पिलादें। यह क्वाथ तमक श्वास वाले रोगी को बहुत हितकर पाया गया है।

चूर्ण

मांडूकी जड़ (ब्राह्मी भेद) चार आना भर नित्य प्रातः पानी या दूध में पीसकर पीना चाहिये। इसके सेवन से दस्त साफ होता है, तथा श्वास का फूलना बन्द हो जाता है।

हंसराज जडी =) भर, १ छटांक गोदुग्ध (पकाये हुये) में पीसकर प्रातः-सायं पीने से दस्त साफ होता है तथा क्षुद्रादि श्वास वाले रोगी को भी लाभ पहुचता है।

ईसबगोल १ तो०, घी गाय का १ तो०, मिश्री १ तो० इन तीनों का हलुआ बनाकर रोगी को नित्य प्रातः खिलावे।

कफ की अधिकता में मृत्युञ्जयवटी तथा आनन्दभैरव पान का रस, अदरख का रस तथा अरूसा पत्र रस में मधु मिला दे।

इस तमकश्वास में च्यवनप्राशावलेह, कूष्मांड खंड तथा एलादिगुटिका का सेवन कराना बहुत ही श्रेष्ठ तथा लाभप्रद है।

ववासीरयुक्त श्वास वाले रोगी को

सनाय की पत्ती ऽ-, मुलैठी ऽ-, सौंफ ऽ-, शुद्ध आमलासार २।।) भर इन सबको कुटछान बराबर मिश्री मिला शीशी में रक्खे रात्रि में रोगी को ६ मा० खिलाकर गौ का दूध पिलादे, इससे सुबह दस्त साफ आयेगा ।

क्षुद्र श्वास की चिकित्सा

मे लवङ्गादिवटी को चूसना परम हितकर है तथा शार्ङ्गधरोक्त तालीसादि चूर्ण मधुयुक्त खाना परमोपयोगी है ।

लवङ्गादिवटी विधि

लौंग २ तो०, बहेड़े का छिलका २ तो०, मिर्च २ तो०, खैर ७।। तो० कूट छानकर बबूल के छाल के काढ़े में २ दिन तक लगातार घोंट चने बराबर गोली बनावे । इसके चूसने से सूखी खांसी श्वास का फूलना तथा कण्ठ का सूखना, तृषा इत्यादि आराम हो जाते हैं ।

श्वासान्तक रस (एक महात्मा द्वारा)

शुद्ध पारा १ तो०, शुद्ध गंधक १ तो० दोनो की कज्जली करले । शोरा कलमी २ तो०, कालमिर्च १ तो० पीसकर कज्जली में मिला किसी कुल्हड़ में रख कपड़ मिट्टी कर । पश्चात् ५-६ सेर उपलों के बीच रख फूंक ठंडा होने पर बना औषधि निकाल

कपड़छन कर शीशी में रक्खे। मात्रा–आधी से १ रत्ती तक दवा दो मुनक्को में रखकर प्रातः सायं रोगी को खिलाये।

इससे क्षुद्र श्वास का फूलना तथा तमक श्वास में कफ का जाना बन्द हो जाता है स्वरभंग नष्ट होता है और काम की इच्छा बढ़ती है यदि श्वास के साथ गरम वायु निकलती हो तो अड़ूसे के रस तथा मधु के साथ रोगी को सेवन कराये।

कास कर्तरी रस

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, पीपल छोटी ४ भाग हर्रा का छिलका ८ भाग, बहेड़े का छिलका १६ भाग, अड़ूसा के पत्तों का चूर्ण बत्तीस भाग, प्रथम पारा गंधक की कज्जली कर सब औषधियों का चूर्ण करके मिलावे बाद बबूल के छाल के काढ़े की २१ बार भावना दे और सुखाकर शीशी में रखे। आधी से १ रत्ती तक औषधि मधु के साथ रोगी को सेवन कराये। इससे खांसी युक्त श्वास आराम हो जाता है।

परिशिष्ट

बच्चों का कफोल्बण श्वास में दो छोटी हरें भूनकर कूट कर सांभर नमक, हींग तथा तपाया हुआ ८ आने भर घी मिला पिलाना चाहिये यह मात्रा १ साल के बच्चे की है।

बच्चों को कफोल्बण श्वास में केशर अम्बर १ मा०, भट-कटैया के बीज का जीरा, दूध में घोटकर बाजरे बराबर गोली बनावे। १ माह के बच्चे को मां के दूध में सुबह शाम देना चाहिये।

कफ वातात्मक श्वास में सोनापाठी के फल के भीतर का बीज १ वर्ष के लड़के को मां के दूध में १ दाना गोल मिर्च के साथ दिन में २-३ बार देनी चाहिये इससे पित्त युक्त श्वास भी आराम हो जाता है।

श्वास वाले रोगी को पथ्य

पुराना चावल का भात, गेहूँ, यवागू, घृत, मधु, गौ व बकरी का दुग्ध, मुनक्का, बैंगन, परवल, चौराई, बथुआ आदि का शाक, नीबू, बिजौरा तथा मोर, तीतर, लवा आदि पक्षियों का मांस धूम्रपान, लाक्षादि तेल की मालिश, शीतल या गरम जल स्नान तथा गीले कपड़े से शरीर का पोंछना दिन में सोना इत्यादि श्वास रोगी को हितकर है।

अपथ्य

मल, मूत्र आदि वेगों का रोकना नस्य कर्म, वस्ति कर्म क या क्षुधा और तृषा का रोकना, रास्ता का चलना, बोझ उठाना धुली रुई धुनने की गर्दी, धूप की किरण, विष्टम्भ स्त्री प्रसंग विदाही (जलन पैदा करने वाली वस्तु) तेल की भुनी हुई वस्तु, कफकारी पदार्थ, उड़द, बहुत जल का पीना, गाय का दूध और विशेष घी तथा रुक्ष पदार्थ का सेवन श्वास वाले रोगी को वर्जित है।

प्रतिश्यायादथकासः कासात्संजायते क्षयः।
क्षयोरोगस्य हेतुत्वे शोषश्चाप्युप जायते॥

• यह मानी हुई बात है कि तमकश्वास के न छूटने पर ज्वर या खांसी की विशेषता होने से कफ में रक्त के छींटे आने लगते हैं तथा यों ही अति कफ का प्रवाह बढ़ जाता है अर्थात् इसी के साथ बहुत कफ जाने लगता है। अतः इसके प्रारम्भ होते ही शमनार्थ चिकित्सा करना आवश्यक है। इसे कोई (जीर्ण ज्वर) भी कहते हैं।

औषधि

पुराने तुलसी वृक्ष के जड़ का चूर्ण २ मा०, खहर्दई ३ मा० यह मकानों की दीवारों में आपसे आप उगती है, तथा फूल छोटे छोटे पीले रंग के होते हैं, गोल मिर्च १० दाना थोड़े ठंडे पानी में पीस कर पीवे तथा जाड़े में प्रथम कटोरी गरम कर औषधि को पोस छौंक कर तब पीवे। ऐसे ही सुबह शाम एक हफ्ते तक पीवे, कुछ फायदा होने पर बराबर पीता रहे जब तक कि अच्छा न हो जाय। इसके सेवन से पुराना ज्वर तथा खांसी रक्त के छींटे आदि उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

पथ्य—रूखी दाल, रोटी परवल की तरकारी, आठ रोज बाद रोगी को घृत दुग्ध थोड़ा २ बलानुसार देवे।

दूसरी औषधि

पुराने तुलसी के वृक्ष की जड़ १० तो०, पीपल १ तो०, गुर्च का सत १ तो०, काकड़ासिंगी १ तो०, छोटी इलायची का दाना १ तो०, बंशलोचन १ तो०, सबको कूट कपड़छान कर

एक में मिला शीशी में यत्न पूर्वक रखे। औषध देने के समय पहिले एक तोला पानी आग पर रक्खे जब उबलने लगे तो १ मा० उपरोक्त चूर्ण डाल उबाला कर उतार ले पश्चात् ठंडा कर रोगी को पिलाये।

रक्त पित्त और खांसी पर

(१) मूंगे की जड़ का चूर्ण ऽ- बबूल का गोंद २ तो० चार तोले जल में मिला दे, बाद उसी जल द्वारा मूंगे को घोट फूली मटर के बराबर गोली बनावे। इसके चूसने से खून का आना बन्द हो जाता है।

(२) विशेष कफ के साथ से नया श्वास में नवीन बहेड़े के छिलके की बुकनी २ मा० से ४ माशे तक सुबह-शाम शहद से चाटने से अत्यन्त लाभ पहुंचाता है।

(३) इलायची छोटी का दाना, अजमोदा, [illegible], हर्रो, बहेड़, खैर[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] शुद्ध भिलावा, [illegible], [illegible], [illegible], सोंठ और [illegible] प्रत्येक [illegible] [illegible] जल के [illegible] [illegible] शुद्ध [illegible] में मधुरी आंच [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] फिर [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] [illegible] शीशी [illegible] में रक्खे एक [illegible] [illegible] अनुसार [illegible]

वाले रोगी को बकरी के दुग्ध के साथ इनको खमद [illegible] पिलावे ऐसे रोगी को जिस स्थान में बकरियें रहती हैं, [illegible] चाहिये। [illegible] साथ [illegible] तथा लेंडी से तपाया हुआ [illegible] देवे [illegible] से असाध्य यक्ष्मा के रोगी [illegible] हो जाता है, [illegible] की अजमाई हुई है। [illegible] एक मंडलसे तीन मडल [illegible]

श्वास रोगी की चिकित्सा [illegible]

सब श्वास [illegible] रोगी की देह से [illegible], [illegible] ([illegible]) [illegible] कफ नाशक [illegible] करे।

हेतु यह है [illegible] जम जाता है। [illegible] है और शरीर को [illegible] है। [illegible] पतला पड़ जाता है [illegible] पतरा [illegible] है

[illegible]

[illegible]

लवण (सैंधव, सोचर, सांभर, रहका, विड) ये द्वा समस्त भाग लेकर बारीक कूट-पीस कपड़ छान चूर्ण बना शीशी में भर रक्खे। मात्रा—खुराक ३ मासे से ६ मा० तक।

समय—सुबह और शाम (अनुपान) गर्म जल के साथ (रोग लाभ) वात कफ नाशक, हिचकी, श्वास, ऊर्ध्व श्वास, खांसी और अरुचि, नाशक एक ही है और अनुभूत है।

श्वास-कास में वमन विधि

मुलठी और मैनफल को समभाग ले क्वाथ कर मल छान ले, इसी क्वाथ से मैनफल [illegible] भागी (भिगा) घोटकर सुखा लें फिर २ तोला, मुलेठी ५ तोला, मैनफल १ सेर, जल में अर्धावशेष काढ़ा कर छान ले [illegible] रोगी का बलाबल देखकर (मात्रा) १ तो०, से ४ तो० तक उपरोक्त चूर्ण मुख में रख (अनुपान) उपरोक्त काढ़ा से उतार जावे। फल ८ या १० (वमन) के खुलकर होंगी। यदि कै में नीला, पीला पित्त निकलना बन्द न हो तो एक दिन बीच मे देकर फिर वमन कराये। सारा दुष्ट कफ निकल कर सुख होगा बाद श्वासनाशक औषधियो के सेवन के काम श्वास रोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

श्वास नाशक योग

(१) श्वास वेग के समय १ या २ अरलूबीज, १ मासे मुलहटी के चूर्ण के साथ जल या शहद के साथ पीसकर चटादे। श्वास रुक जायगी।

(२) कनक (धतूरा) जड़, फूल, फल, पत्ता, शाख खुश्ककर कूट पीस रक्खे। मात्रा—२ या ६ मा० चिलम में धर तमाखू की तरह धुआं लेने से दमा रुक जाता है और मुर्छा भी।

(३) अलसी (बिजरी) साफ बीन कड़ाई में रख कर भूनलें फिर बारीक पीस समभाग सिता (मिश्री) बारीक पीस कर मिलादें। और किंचत् अन्दाज मुताबिक स्याह मिर्च का चूर्ण भी मिलादे शहद से १ तोला की गोलिया बनावें। मात्रा—१ गोली समय—सुबह शाम खाने से श्वास नष्ट हो जाता है।

नोट—गोली खाकर १ घंटा पानी न पीना चाहिये यह फकीरी नुटका है।

(४) बाबाजी की भभूत—बागादि में एक भरवाड़ी घास होती है उसकी चोटी पर काल रङ्ग की काटेदार बाल निकलती है उसी को परवा बोलते हैं, हवा के बल से एक दूसरे से लपट कर इकट्ठा हो जाते है, व परवा २-३ पाव लाकर एक मिट्टी की हांडी में भरकर मुखमुद्रा कर, कपड़मिट्टी लगाय, सुखाय गजपुट में रख २४ घण्टा की आंच दे। शीतल होने पर निकाल ले, फिर इस भस्म को खरल कर अन्दाज माफिक ४-५ वर्ष का पुराना गुड़ मिला, चना समान गोलिया बना, छाया में रक्खे।

मात्रा—१ गोली। समय-प्रातः, सायं। अनुपान-बकरी का दूध। फल-श्वासरोग नष्ट करने में रामबाण है।

(५) श्वासामृत-साफ गुलाबी फिटकरी और साफ नौसादर ये पाव २ भर ले, कूट पीसकर एक हांडी में रख दे। दूसरी

हांडी का मुख उस हांडी के मुख स मिला, *पड़मिट्टी लगा, सुखा डमरू यन्त्र विधि से जौहर उड़ा ले। मात्रा-४ चावल। अनुपान-आद् पान में रखकर चूस जाय। गुण-पहिली मात्रा से ही लाभ होता है। १५-२० दिन में पूरा फायदा होता है।

(६) कफद्रव लवण—खारी नोन, सैंधव लवण, सोंचर, सांभर नमक समान भाग ले, चूर्ण कर अक दुग्ध से खरल कर गोली बना ले। आक पात लपेट कपड़ामिट्टी कर सुखाय।S५ सेर उपलों में फूंक दे। शीतल होने पर निकाल, कूटपीस, शबत गुल बनफसा से खरल कर चना समान गोलियां बनाले। मात्रा-१ या २ गोली। समय-भोजन करने के उपरांत।

नोट—गोली खाने के पाछे २ घंटा पानी न पीना चाहिये। पीला कफ निकल कर श्वास रोग नष्ट हो जायगा।

(७) अच्छी हींग घी में भुनी १॥ तो०, पीपर लघु ३ तो० उर्द की धोवा दाल ३ तो०, तीनो का चूर्ण बना आकन्द (अकौड़ा) दूध से खरल कर अठन्नी के बराबर टिकिया बनाकर छाया में सुखा ले, अजा (बकरा) की लेंडी की निधूम आग में रखकर जलावे। अधजली होने पर निकाल कटोरा से बन्द करदे फिर निकाल साफ कर रख ले। मात्रा-१ टिकिया। समय-सुबह शाम अनुपान-मधु से। फल-४० दिन में श्वास का नामोनिशान भी न रहेगा। दस्त की राह कफ की गांठें गलकर निकल जावेंगी।

वैद्यक के प्रसिद्ध प्रसिद्ध योग

(१) श्वास कुठार रस—सिंगरफी शुद्ध पारा १ तो०, शुद्ध

आमलासार गन्धक १ तोला दोनों की कजली बनाले, पश्चात् शुद्ध सिंगिया १ तो०, शुद्ध मैनासिल १ तो०, शुद्ध चौकिया सुहागा १ तो० ये सब चूर्ण कर खूब खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनाले । मात्रा-१ गोली । समय-सुबह शाम । अनुपान-३ माशा मधु व ३ माशा अदरख रस १ मा०, पान रस के साथ सेवन करने से श्वास रोग नष्ट होता है ।

(२) शृङ्गाराभ्रक—शुद्ध पारद ३ मा०, शुद्ध आमलासार गंधक ६ मा० दोनोंकी कजली बना, कृष्णाभ्रक भस्म ८ तो० भीम-सेनी कपूर, जावित्री, पीपर लघु, नेत्रबाला, जटामांसी, तालीश-पत्र, गजपीपर, तमालपत्र, (तेजपात) नागकेशर असला, सोंठ, मिर्च, तज, लौंग, आंमला, बहेरा का बकला, पीलाहर की बकली, धौं फूल ये १॥ १॥ तोला और जातीफल (जायफल) एला (गुजराती दाना) ये छः छः मा० सबको कपड़ छान चूर्ण करके, उपरोक्त कज्जली मिलाय, बिभीतक (बहेरा) के काथ से १ पहर घोट कर, मटर सी गोली बनाले (मात्रा) २ गोली से चार गोली तक (अनुपान) पानरस २ मासा, अदरख रस ३ मा० के संग (समय) प्रातः (रोग) कास, श्वास, ज्वर, मन्दाग्नि उदर शूल, सूजन, प्रमेह, उदर रोग, नेत्र विकार, अम्लपित्त रक्तपित्त व्याधि, पांडु रोग, छर्दि, आम गुल्म, क्षयी, कुष्ठ विकार, लोहा, वात कफादि का प्रकोप, विष अन्य रोग दूर हो । बलकारी, रतिशक्ति वर्द्धक है ।

नोट—इसके सेवन के समय दूध घृत के पदार्थ खाया करे

(३) (त्रिवंग भस्म) जस्ता, रांगा, शीशा ये तीनो उत्तम शुद्ध किये पांच २ तो० लेकर गलावे, फिर इसमें १५ तो० शुद्ध पारा मिलाय खरल करे, फिर नीबू रस से खरल कर पानी से खूब धो लीजिये। सुखा कर फिर इस में १० तोला शुद्ध तबकी हरताल, १५ तो० शुद्ध आवलासार गंधक सबको पीस मिलाय खूब खरल करें, फिर शीशी में भर बालुका यंत्र में रखकर क्रमशः मंद मध्य, प्रचण्ड अग्नि देव जब नली के द्वारा धुवां निकलना बन्द हो जाय स्वाग शीतल करले नली के चारो तरफ लगा ताल सिंदूर और तल भाग में त्रिबंग भस्म मिलेंगे तालसिंदूर और त्रिवंग भस्म दोनों को घोट कर अथवा त्रिबग भस्म खाली (मात्रा) १ रत्ती से ४ रत्ती तक (समय) सुबह शाम (अनुपान) अडूसा क्वाथ संग ६ मा० मधु मिलाकर दें। रोग श्वास, कास, क्षयी, रक्त पित्त, कुष्ट, प्रमेह, दुर्बलता, मन्दाग्नि, नष्ट होते हैं।

(४) (कालेश्वरोरसः) दस आंच का बंगेश्वर, उत्तम कान्तीसार भस्म, ताम्बेश्वर भस्म, सौ आंच का अभ्रक भस्म, चन्द्रोदय, सुवर्ण माक्षिक भस्म, शुद्ध सिंगरफ (इंगुर), शुद्ध आवलासार गन्धक ये छः २ मा० ले खूब महीन खरल करे। पश्चात् लौंग, जायफल, गुजराती दाना, दालचीनी, असली नाग केशर और शुद्ध सिंगिया, शुद्ध श्याम धतूरे के बीज, शुद्ध जमालगोटा बीज तैल रहित, शुद्ध चौकिया सुहागा इनका कपड़छन चूर्ण ४ तो० ले और लघुपीपल का चूर्ण ४ तो० ले

सबको मिलाय, एक २ दिन अड्रूसा के पत्ता के रस में, लटजीरा रस में निगुंडी रस में, भांग रस में और धमरा रस की भावना देन से तैयार (मात्रा) १ चावल से रत्ती तक बलाबल अनुसार (समय) सुबह शाम, (अनुपान) शहद संग, (रोग) कफ जनित श्वास रोग को शीघ्र ही नष्ट करता है।

(४) अभयादि घृत—अभया (बड़ी हड़) की बकली ऽ॥ बिडनमक (मानयारी नमक) ऽ= (रामठ) उत्तम हींग अधभुनी १ तोला ले, एक बर्ष के ऊपर का गौ घृत ऽ१ ले बनाने की बिधि- हरें का बकला ४ सेर पानी में अर्धावशेष क्वाथ कर मल छान ले कलईदार कढ़ाही में क्वाथ जल और घृत मिलाय पकावे जब खूब पकने लगे तब उसमें शेष बस्तुएं पीस कर मिला दे, जब पानी सब जल जाय, घी मात्र रह जाय तब आग से उतार ठंडाकर छान बोतल में भर रखे। मात्रा-१ तो० से ४ तो० तक। रोगी के बलाबल के अनुसार। समय-सुबह शाम पीये या खाने के साथ खा सकता है ऊपर से पान या इलायची खा ले. पानी न पिये। कुछ दिन लगातार सेवन से श्वास, खांसी, हिक्का और हृदय को बड़ा लाभ देता है। सूचना—पहिले घी पीनेसे कास श्वास उभड आती है इससे घृत को नुकसानकर्त्ता न समझना चाहिये।

(५) बिल्वादि घृत—यदि श्वास के रोगी को पतले दस्त आते हों तो ताजा घी गौ का ऽ१, कच्चे बेल का गूदा ऽ।, बड़ी हर्र का बक्कल ऽ= काला नमक (सोंचर) ऽ-। बनाने की बिधि—

बेल और हरड़ को अठगुने जल में चतुर्थांश क्वाथ करें। मल छान घी में डाल मन्द आंच से पकायें जब आधा जल बाकी रहे तब नमक छोड़ दे। जब घी मात्र रहे तब छान बोतल में भर रखे पूर्वोक्त विधि से कुछ दिन बराबर सेवन करने से श्वास और पतले दस्तों को बड़ा लाभ देता है।

(७) अनुभूत योग—तुत्थ (तूतिया नीलाथोथा) १ तो०, रक्त (लाल) फिटकरी १ तो० दोनों को पीसकर कटुतुम्बी हरी के भीतर भर दे। ४० दिन में उसे पीसकर शीशी में रक्खे। मात्रा आधी रत्ती। समय-प्रातः। अनुपान-बीज रहित मुनक्का में डाल कर पानी या सौंफाक से देवे। फल-इससे वमन विरेचन दोनों होते हैं। १० दिन में कफजनित श्वास और शेष रोग आराम हो जाते हैं।

(८) अनुभूत योग-(गूलर) ऊमर के पत्र व फल, फूल, गूलर छाल ये हरएक ३ सेर लेकर, कुचल १६ सेर जल में ४८ घंटा भिगो रखे फिर उसको औटाकर चतुर्थांश क्वाथ कर मल छान ले। इसमें ३ सेर खांड़ दानेदार खजूरी बनी हुई जो बम्बई से लाली लिये आती है, डालकर शर्बत बना ले। मात्रा-२ तोला समय-सुबह, दोपहर, शाम चाटा करे तो श्वास रोग समूल नष्ट हो जायगा।

(९) [गरम] खुश्कदमा—ईसबगोल की भूसी या सत्व ३ मासे, दूध या शर्बत बादाम के साथ सेवन करने से ३-४ माह में सर्वथा आराम हो जाता है।

श्वास रोग में पथ्य

जौ तथा गेहूँ की रोटी, साठी या पुराने चावल का भात, मूंग की धुली दाल, गौ या बकरी का दूध, मलाई, मक्खन, घी, मिश्री, शहद, अदरक, धान का लावा। तरकारी—बथुआ, मूली का साग, केला, परवल, कद्दू, आलू और मुलायम भांटा का भरता। मसाला—स्याह मिर्च, जीरा, लौंग, इलायची, नमक, धनिया। फल—केला अंगूर और खूब मीठा आम, छुहारा, मुनक्का, कम सुबह शाम ताजी शुद्ध हवा का खाना, सर्दी गर्मी से बचना और श्वास रोग में अरूसा जल का ही सेवन करना जिसके बनाने की विधि आगे लिखेंगे।

अपथ्य

गुदामार्ग में पिचकारी तथा मल, मूत्र, डकार, खांसी, छींक का रोकना, कब्ज करने वाले और छाती में जलन करने वाली और विरुद्ध तथा रूखा अन्न, बहुत रास्ता चलना, गर्दा, भस्म और धुआं का खाना, स्त्री प्रसंग करना, घाम और आग में रहना, सड़ा गन्दा खराब जल पीना त्याग देना।

पेय पदार्थ

आजमाने से जाना गया है कि कास-श्वास की बीमारी में अरूसा जल बहुत फायदा करता है।

उसके बनाने की विधि

अरूसा का पञ्चांग लाकर सुखाये और जला दे। जब जल

कर निर्धूम हो जाय तब उसे एक बरतन से बन्द करदे, ठंडा होने पर उस कोयले को पानी से धोकर रखले। एक घड़ा साफ जमीन पर धरो, उसके मुख पर दूसरा घड़ा जिसकी पेंदी में छोटा सा छेद कर कपड़े की बत्ती लगा उसमें सवा सेर कोयला भरके रख दे फिर इस घड़े पर एक तीसरा घड़ा जिसकी पेंदी में छोटा छेद कर कपड़े की बत्ती लगा उसमें साफ जल भर रखदो और मुख बन्द करदो। ऊपर वाले घड़े से पानी टपक कर कोयले वाले घड़े में आयेगा। उससे टपककर नीचे के घड़े में आयेगा यही अरूसा जल है।

छठे सातवे दिन कोयला पलट दिया करे। कास श्वास वाले रोगी को जब प्यास लगे तब यही अरूसा जल पीवे तो कितना ही पुराना कास श्वास हो, आराम हो जाता है।

गोकुलप्रसाद प्रजावैद्य।

श्वास पर अन्य वैद्यों से प्राप्त अनुभूत योग

इस रोग में—वासारिष्ट अत्यन्त गुणकारी है। सैकड़ों वार का परीक्षित है। मात्रा देते ही श्वास का वेग बन्द हो रोगी सुख में आ जाता है। विधि यह है—

वासा (अरूसा) के पत्तों का अर्क १०० तो०, मृतसञ्जीवनी सुरा १०० तो०. मौरेठी सत्व २ तो०, कपूर डेली १ तो०, अफीम १ तो०, भारंगी १ तो०. बहेरे का बक्कल २ तो०, लौंग १ तो०, जायफल १ तो०, इलायची छोटी २ तो०, मिर्च स्याह १ तो०

तालीसपत्र १ तो०, काकड़ासिंगी १ तो०, मिश्री ४० तो० इन सब औषधियों को जौ कूटकर चिकने बर्तन में भर १ माह रखा रहने दे बाद को छानकर काग दार बोतल में भर दे, यह अरिष्ट ३ मा० से ६ मा० तक पानी में मिला देने से कास श्वास में अद्भुत गुण करता है।

वैद्यराज पं० विश्वेश्वरदयालु जी

श्वास गजेन्द्र केशरी रस

लोहभस्म ४ आना भर, अभ्रक भस्म ४ आना भर, प्रवाल भस्म ४ आना भर, शुद्ध हिंगुल रूमी ६ आना भर, हरिताल भस्म ४ आना भर, शङ्खभस्म ४ आना इन सबको पान के रस में खरल करके १-१ रत्ती की गोलियां बना ले, फिर शहद और पीपल चूर्ण के साथ खाये। १४ गोली ७ दिन में सायं प्रातः सेवन करे तो कैसा भी श्वास हो शीघ्र साम्यता को प्राप्त होता है।

२—शुभ्र पर्पटी

सुहागा १ तो०, फिटकरी सफेद २ तो०, नौसादर २ तो०, कलमीशोरा १ तो०, इन सबको अर्थात् पहिले फिटकरी शोरा को कढ़ाई में गला फिर सुहागा व नौसादर डाल ठंडा करलें और फिर चूर्ण कर शीशी में स्थापित कर दे और वक्त जरूरत दो माशा पान के साथ सेवन करने से भयंकर श्वास कास नष्ट होते हैं।

३—लोबानार्कः

कौड़िया लोबान ऽ। भर, लौंग ५ तोला जायफल ४ तोला

जावित्री ४ तो०, समलकांगनी आधा पाव, सुयवाला चाव २ तोला, सफेद मिर्च १ तो० इनको बकरी के दूध में या अदरख में या नींबू के रस या सिरका में घोटकर गोली बनाकर पातालयन्त्र द्वारा तेल निकालें, जितने तोला तेल निकले उतने तोला कस्तूरी मिला श्वास में १ रत्ती मक्खन में सेवन कराये।

४—श्वास वटिका

शङ्खभस्म ६ मासे, शुक्तभस्म ४ मासे, आटरूष (अरूसा) रस ऽ॥, कण्टकारी रस ऽ–, यष्टी सत (मौरठी सत) २॥ तोला मधु ४ तो० सब सम्मर्द्य वटिका कुर्या रक्तैत्। माषक त्रयोन्मिता मात्रा–प्रातः सेवयेत्तेन श्वसनरुक् शान्ता भवति।

नोट

मेरी यही प्रार्थना है कि पथ्य श्वास रोगी को स्वासाधिकार बहुत रखे तथा यही दवाओं की मात्रा पूरी लगाई गई है अतः बलाबल विचार प्रयोग करें तथा योगों में जो कुछ भ्रम हो या समझ में कम आती हो वहां के लिए मुझे फिर सूचना करें ताकि शुद्ध कर दी जाये।

वैद्यराज पं० बसन्तीलाल जी मिश्र
जसरापुर (राजपुताना) शेखावाटी।

बालकों का कास श्वास

जिसको बाज लोग पसली का चलना और कोई २ डब्बा भी कहते हैं और स्त्रियां इसको धड़का (झपेटा) कहती हैं।

बालकों का यह रोग माता के कुपथ्य अर्थात् बदपरहेजी और ठीक भोजन न मिलनेसे ही होता है [illegible] (हुब्बा) यानी नाक बहती है, व इसमें खांसी [illegible] बढ़ती जाती है और [illegible] लगता है, [illegible] लगता है तब बच्चा पेट द्वारा श्वास लेने लगता है। इसी हेतु पेट उछलने लगता है और [illegible] लगते हैं [illegible] समय मुख लाल [illegible] और [illegible] जाती है, खांसत २ वमन भी हो जाता है [illegible] देह से स्वेद आता है, दूध नहीं पीता, [illegible] कम [illegible] है, [illegible] सूखना, प्यास की अधिकता, [illegible] इससे बच्चे कमजोर हो जाते हैं, श्वास कठिनता से ली जाती है, [illegible] श्वास अधूरा बड़ी कठिनता से आता है। अन्त में मूर्छित हो प्राण परित्याग करता है।

उक्त रोग के लक्षण

मां के कुपथ्य से दूध विरुद्ध हो जाता है, उस दूध के पीने से, बच्चों के पक्वाशय की वायु कुपित हो पित्त के साथ मिल जाने से, छाती का कफ सूख जाता है, तब प्राण प्रद वायु के अवरोध से श्वास गत वायु का [illegible], कुछ कम होने के सबब बच्चा का एक प्रकार का हांफना आने लगता है तब पेट उसका अति कोमलता के सबब उछलने लगता है, इसी को लोग पसुली की बीमारी बोलते हैं। यह रोग दो प्रकार का होता है १-वायु पित्त के कोप से २-श्लेष्म वायु से।

(.) वातपित्त के लक्षण—पेट कम उछले, पतले दस्त मूत्र कम और अति गर्म, गले में कफ बोले या न बोले, प्यास से ओठ चाटे, पानी की तरफ ज्यादा इच्छा हो। कपड़ा मुह पर न रक्खे और घबड़ा कर दूध भी पिये।

(२) वायु के लक्षण—मल-सूख जाने से दस्त न हो पेट बहुत उछले, मूत्र थोड़ा और बहुत गर्म उतरे, गले में कफ घरघराया या सांय २ हो, नासिका खुश्क, मुख से श्वास लेवे और पेट फूल आवे, ऐसा आरोग्य दर्पण में कहा है।

बालकों के कास श्वास (पसुली-डब्बा) रोग की अनुभूत औषधियां

यहां पर यह बता देना गैर मुनासिब न होगा कि बालक उम्र भेद से ३ प्रकार के होते हैं।

(१) जो मां का दूध ही पीता है, ऐसे बालक को दवा न खिलाना, उसके दूध पिलाने वाली को ही दवा देना।

(२) दूध और अन्न खाने वाला, ऐसे बालक को दवा देना और दूध पिलाने वाली को भी दवा देना चाहिये।

(३) सिर्फ अन्न खाने वाला, ऐसे बालकों को ही दवा देना चाहिये।

योग

(१) वातपित्तज कास पर—[दस्त को गाढ़ा और कम करने का योग] बेलगूदा सूखा १ माशा पुराने आम की गिरी

और मिश्री चार २ माशा चूर्ण कर ४ मात्रा बना ले, पानी के साथ दिन में ४ बार खिला दें। दो रोज में दस्त गाढ़ा और कम हो जायगा, तीसरे दिन २ घंटा पीछे ४ दाना शीतल चीनी का चूर्ण जल के साथ देकर मूत्र की गर्मी भी दूर करदे। जब मल मूत्र साफ होने लगे, सिर्फ कण्ठ में कफ बोलता रह जाये तब सोडा ६ रत्ती, मिश्री ४ रत्ती मिला ४ मात्रा कर जलके साथ दिन में चार बार पिला दे। पसुली का चलना बन्द हो जायगा (माता) को गरम चीजों से परहेज। उपरोक्त मात्रा दो वर्ष के बालक की है। इससे कम उम्र वाले को आधी मात्रा।

(३) जो केवल वायु से हो तस्य योग—प्रथम दस्त खुलासा कराये योग यह है कि गुलकन्द गुलाब ४ मा०, जरा से पानी से मल छान इसी में सोडा ३ रत्ती मिला पिला दे, दिन में ३ या ४ बार। यदि दस्त न आये तो दूसरे दिन सवेरे साफ रेंडी का तेल २ माशा में २ बूंद तारपीन का तेल थोड़े से दूध में मिला पिला दे। दस्त साफ होने के बाद ५ या ७ दाना शीतलचीनी का चूर्ण पानी से मिलाकर मूत्र भी साफ कर दे। पथ्य— मूंग की खिचड़ी या साबूदाना दूध और मिश्री का दें। ५-७ दिन में खूब आराम हो जायगा।

सिर्फ दूध पीने वाले बच्चे को कास श्वासादि की बीमारी हुई हो तो उसे न अति गर्म स्थान में उढ़ा कर ही रखे न उसकी देह में सर्दी ही लगने पाये। बच्चे की भीतरी गर्मी सर्दी जान स्थान आदि का यत्न करे।

बच्चों की अन्दरूनी गर्मी सर्दी जानने के सहज लक्षण

बच्चे जब मूत्र करने लगे तब उस मूत्र का हाथ पर ले यदि मूत्र गर्म और कम मूते तो गर्मी और जो मूत्र सर्द और ज्यादा मूते तो सर्दी जाने । गर्मी से मल पतला और कम, सर्दी से गाढ़ा बहुत होता है ।

नस्य योग

गुल बनफ्शा ६ मा०, मुलहटी ४ मा०, अलसी ४ मा०, मुनक्का ६ आने, मिश्री १ तो० सबको कूटकर पावभर जल में अर्द्धावशेष काथ कर छान गुनगुना दूध पिलाने वाली को सुबह शाम पिलाये । यदि सर्दी बहुत मालूम हो तो लघु पीपल का चूर्ण १ माशा शहद से चाटकर ऊपर से काथ पीवे ।

अगर बालक दूध पीता हो और अन्न भी खाता हो तो उपरोक्त काढ़े में से आयु के अनुसार आधा या न्यूनाधिक चम्मच बालक को पिलाये बाकी दाइ पी जाये । सिर्फ अन्न ही खाने वाले को बलाबल देखकर काढ़ा की मात्रा कम करके तयार कर पिलावे आठ-दस दिन के सेवन से कास श्वास रोग समूल मिट जाय ।

(२) गुल बनफ्शा १ मा०, गुल नीलोफर १ मा०, गुलाब पुष्प १ माशा, मकोय १ मा०, उन्नाब १ दाना, लसोड़ा १ दाना मुनक्का १ दाना, गुलकन्द गुलाब १ तो०, अमलतास गूदा ३ मा० डेढ़ छटांक पानी में पकाये । आधा रहने पर मल छान गुनगुना

बालक को २ बार करके पिलाये और प्याज स्वरस १ तो० एलुवा ३ मा० घोलकर गरम २ पसलियों पर लेप करे. निःसन्देह ही आराम हो जायगा।

(३) इसारारेवन्द १ भाग, तूतिया भुना १ भाग, शुद्धगंधक ३ भाग पानी से घोंटकर मोठ प्रमाण गोलियां बनाये। मा के दूध से १ गोली खिलादे। दस्त या वमन होकर रोग ठीक हो जायगा।

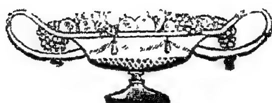
(४) रीठा की रवेत मींगी १ मा०, तुख्मखील १ मा० चूर्ण कर आधा चावल मां के दूध से साथ देने से आराम होगा। यह मात्रा एक वर्ष के बालक की है, इससे छोटे बड़े का न्यूनाधिक अर्थात् चौथाइ चावल और एक चावल की मात्रा जानो।

(५) सत्यानाशी (कमाय या कंग) के बीज १ मासे, उसारे रेवन्द १ मासे जल में घोटकर मसूर समान गोलियां बना ले। १ गोली मां के दूध के साथ देने से वमन, दस्त होकर आराम हो जाता है।

॥ अलिमित ॥

बिश्वसेवक—गोकुलप्रसाद स्वर्णकार प्रजावैद्य

घाटमपुर-कानपुर।



अनुभूत योगमाला के यशस्वी सम्पादक द्वारा लिखित.

कुछ अमूल्य पुस्तकें

क्या आप नहीं जानते—सम्पादक "अनुभूत योगमाला" की लिखित पुस्तकें पढ़ना अपूर्व ज्ञान संग्रह करना है। जिन विषयों पर यह पुस्तकें लिखी गई हैं उन विषयों में और कुछ जानना शेष नहीं रह गया है। एक बार देखिएगा।

राजयक्ष्मा

नि० भा० आ० महा-मण्डल द्वारा स्वर्ण-पदक प्राप्त अद्वितीय पुस्तक है। यक्ष्माका निदान भेद और चिकित्सा सराहनीय है। मूल्य ६ आने मात्र ही है।

यकृत प्लीहा के रोग

शरीर में यकृतका क्या स्थानहै, इसके बिना उसमें कौन से रोग पैदा होते हैं, उनकी चिकित्सा क्या है, इसका सुन्दर वर्णन है जो आपको अन्यत्र न मिलेगा। कीमत ६ आने।

स्त्री रोग चिकित्सा

स्त्रियोंको किस अवस्था में कौन रोग हो सकते हैं इसका बहुत ही मार्मिक वर्णन है। मू० ८ आना है।

सिद्ध प्रयोग

अनुभूत रामवाण दवाइयों का खजाना है, हरएक दवा कई बार परीक्षायें करके लिखी गई हैं दोनों भागों का दाम लागत-मात्र १॥)   मिलने का पता—

अनुभूत योगमाला आफिस बरालोकपुर, इटावा

❀ ओ३म् ❀

अंड तथा अन्त्रवृद्धि चिकित्सा

संक्षिप्त रोग विवरण-इस रोग में अण्ड या फोते बड़े हो जाते हैं। कारणपरत्व से इसके अलग २ नाम हैं, वातादि दोषोत्पन्न वृद्धि (अण्ड वृद्धि) को अंग्रेजी में "आरकायटीस" (Orch. itis) और अरबी में वरमउलउन्सियेन कहते हैं। मूत्रज वृद्धि को अंग्रेजी में हाइडरोसील (Hydrocele) तथा अरबी में किल्लतुलरेआ, रक्तजवृद्धि को अंग्रेजी में हिमटोसिल (Haema. tocele) तथा अरबी में फितकउलअमआया कहते हैं। संस्कृत में सामान्यतः सबको वृद्धि ही कहते हैं।

आयुर्वेदमतानुसार इसकी संप्राप्ति इस प्रकार है—शरीर में स्वकारण से कुपित वात, अधोगामी होकर जब वंक्षण (बस्ती के नीचे और जांघ के ऊपर) से होते हुए वृषण या अण्डकोष में

प्राप्त होता है तब वह वहां पर शोथ तथा वेदना को उत्पन्न कर वृषणों की गांठों तथा ऊपर की त्वचा या थैली में रक्त वहन करने वाली धमनियों को दूषित कर देता है. एवं वृषण के दोनों ओर या एक ही ओर वृद्धि (Enlargement of the scrotum) हो जाती है ×।

दोषास्त्र मेदोमूत्रान्त्रै वृद्धिः सप्तधागदः ।

अर्थात्—इस व्याधि के सात भेद हैं-वातादि भेदों से तीन प्रकार की, रक्तसे चौथी, मेद से पांचवीं, मूत्र से छठी और अन्त्रज सातवीं है । इनके अलग २ लक्षण माधवनिदानादि ग्रन्थों में भली भांति वर्णित हैं । वे यहां विस्तार भय से नहीं लिखे जा सकते, तथापि पश्चात्यमतानुसार संक्षेप में दोनों का तुलनात्मक दिग्दर्शन कराना हमें अभीष्ट है ।

आयुर्वेद में वातादि दोषज वृद्धि के जो लक्षण दर्शाये हैं, वे प्रायः सब पाश्चात्य वैद्यक के आर्कायटिस (Orchitis) से मिलते हैं । "आर्कायटिस" नामक वृद्धि रुक्ष होती है (यह

× क्रुद्धश्चोर्ध्वगतिर्वायुः शोफशूलकरश्चरन् ।
कुक्षौ वंक्षणतः प्राप्य फलकोषाभिवाहिनीः ॥
प्रपीड्य धमनी वृद्धिः करोति फल कोषयोः । मा० नि०
अथवा—वृद्धिं करोति कोशस्थः फलकोषाभिवाहिनीः ।
रुद्ध्वा रुद्ध गतिर्वायुर्धमनी मुष्कगामिनीः ।,, भा० प्र०

बात का लक्षण है) वृषणों में मंद अभिताप अर्थात (Chronic in flammation) 'क्रानिक इन्फ्लेमेशन" (यह पित्त का लक्षण है) वृषणान्तर्गत रक्त धमनियां फूल उठती हैं एवं मुष्कों पर सोजा या शोथ हो आती है. वृषण का वर्ण लाल हो जाता है, पैरों में तथा कमर में चोसनवत् पीडा होती है। शरीर में ज्वर चढ़ आता है, जी मिचलाया करता है, तथा कभी २ क्रय भी हो जाती है। यह विकार दोनों अण्डकोषों में होता है किन्तु प्रायः दाहिने अण्डकोष में बहुतायत से देखा जाता है इत्यादि। कौन कह सकता है कि ये लक्षण आयुर्वेदीय दोषज वृद्धि के लक्षणों से मेल नहीं खाते ? देखिये—

वातपूर्ण दृतिः स्पर्शो रुक्षो वातादहेतुरुक् ।
पक्वोदुम्बर संकाशः पित्ताद्दाहोष्म पाकवान ॥
कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डुमान् कठिनोऽल्पऽरुक् ॥

अर्थात्—वात की वृद्धि में वृषणकोष वायु से भरी हुई पखाल जैसे हाथों को लगते हैं, रुक्ष होते हैं तथा अकारण या स्वल्प कारण से ही वेदना करते हैं। पित्त की वृद्धि में पके हुये गूलर के फल समान लाल ज्वर को करने वाली× तथा दाह जलन, पाकादि पित्त के लक्षणों से युक्त और हाथों को गरम गरम मालूम देती है, भारी (वजनदार) चिकनी, खुजली युक्त तथा अल्प पीड़ा वाली होती है।

× ज्वरदाहोष्मवतां चाशु समुत्थापाक पित्तवृद्धिमाचक्षते।—सुश्रुत

केवल फर्क इतना ही है, कि आयुर्वेद में सूत्र रूप से बड़ी खूबी के साथ वे ही लक्षण अलग २ दोषानुरूप दर्शाये गये हैं जो कि पश्चात् वैद्यक ने आर्कायटीस नामक एक ही पिटारी में भर दिये हैं।

रक्तज वृद्धि (Haemtocele) के विषय में पाश्चात्य वैद्यक का मत है कि इस रोग में अन्दर विकृत रक्त का संचय होता है और यह बड़ा त्रासदायक है। कबूल है, इसी से तो आयुर्वेद भी कहता है—कृष्णस्फोटा वृतः पित्त वृद्धि लिंगश्च रक्तजः अर्थात् विकृत रक्त के कारण जो वृद्धि होती है वह काले फोड़े से व्याप्त तथा पित्तवृद्धि के लक्षणों से युक्त होती है।

मेदजन्य वृद्धि को पाश्चात्य वैद्यक Elephantias is of scrotum अर्थात् वृणान्तर्गत श्लीपद रोग मानता है। उसका कथन है कि हाथ, पाँव शिश्न आदि स्थानों में जब श्लीपद होता है तब जिस प्रकार जमी हुई चरबी या मेदा के समान कुछ भाग नजर आता है, उसी प्रकार वृषण में भी दिखाई पड़ता है इसी से हम इसको वृषण का श्लीपद कहते हैं। अच्छा, आप भले ही उसे श्लीपद कहें या और जो चाहे सो कहें, परन्तु आयुर्वेद इसे श्लीपद नहीं मान सकता, क्योंकि "सकण्डुरं-श्लेष्मयुतं श्लीपदं विवर्ज्यम्" ऐसा आयुर्वेद का सिद्धांत है, और मेदजन्य वृद्धि में "कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुताल फलोपमः" कफजन्य वृद्धि के लक्षण खुजली आदि होती है अतएव उसे श्लीपद कहने से असाध्य मानना पड़ेगा, किन्तु "मेदजन्य वृद्धि" को आयुर्वेद असाध्य नहीं

मानना और दूसरा कारण यह है कि ओदन ग्रन्थ पत्थर के समान (शिलावत पद अीपदमिति) कड़ा होता है और "मेदजन्य वृद्धि" तो "मृदु" अर्थात मुलायम होती है। "तालफलोपम:" से उसके कड़ाई का बोध नहीं होता, उससे केवल उसके वर्ण तथा आकार का बोध होता है, जैसा कि विजयरक्षित जी ने लिखा है— "तालफलोपम इति पक्वताल फलमिव नील वर्तुला" अर्थात् परिपक्व ताड़ के फल समान वह नीले वर्णका और गोल होती है।

अब "मूत्रजवृद्धि" के विषय में संक्षेप से विचार करेंगे, आयुर्वेद कहता है—

> मूत्रधारण शीलस्य मूत्रज: सतु गच्छत: ।
> अम्भोभि: पूर्ण दृतिवत् क्षोभं याति मृदु: मृदु ॥
> मूत्रकृच्छ्रमथ: स्याच्च चालयन् फल कोषयो: ॥

अर्थात्—जो मनुष्य मूत्र के वेग को रोकता है। उसे मूत्रज वृद्धि होती है। यह मूत्र वृद्धि चलते समय जल से भरी हुई मसक के समान बोलती है। पीड़ायुक्त तथा कोमल होती है, वेदना मूत्रकृच्छ्र के समान होती है, फल और कोष दोनों इधर उधर को हिलते हैं।

पाश्चात्य वैद्यक इसे ही (Hydrocele) "हायड्रोसील" अर्थात् "जल जन्य वृषण वृद्धि" (Dropsy of the scrotum) कहता है। उसका कथन है कि जिस प्रकार उदर में विकृति जल के सञ्चय से जलोदर (Ascites) सिर में सञ्चित होने से जल जन्य शीर्ष वृद्धि (Hydrocephalus) छाती में

सञ्चय होने से जलज वक्षो वृद्धि (Hydrothorax) और समस्त शरीर में सञ्चय होने से जलज शरीर वृद्धि (Anasarca) इत्यादि वृद्धियां होती हैं, उसे हम उपरोक्त "हायड्रोसील" नाम देते हैं।

इस वृद्धि में वृषण कोषान्तर्गत त्वचा से, एक प्रकार की रक्तजलसिका झरा करती है, तथा वही फिर सिमिट २ कर एकत्रित होती है। जैसे २ इस जल सदृश लसिका का सञ्चय बढ़ता जाता है, तैसे २ वृषणों का आकार भार आदि बढ़ता जाता है। यह रक्त लसिका जल के समान अथवा मूत्र के समान होती है, इसी से कदाचित आयुर्वेद में इस वृद्धि को मूत्रज वृद्धि कहा हो, यह कल्पना डा० गरदे महाशय की है। किन्तु इस विषय में हमारी प्रमाण युक्त सरल कल्पना यह है, कि जो मनुष्य अपने मूत्र के बेगों को रोके रखता है (मूत्र धारण शीलस्य) अथवा जिसके वृषणों में किसी प्रकार की चोट पहुंच जाती है, उसके वृषणों में रुके हुये मूत्र की उष्णता से अथवा चोट जख्म आदि की उष्णता से वृषण स्थित रक्तवाहिनी नलिकाओं से उपरोक्त मूत्र सदृश लसिका का स्राव अत्यधिक होकर यह वृषण वृद्धि होती है, अतएव स्पष्ट कार्य कारण के सम्बन्ध से ही इसे आयुर्वेद में मूत्रज वृद्धि कहते हैं।

इस प्रसिद्ध हायड्रोसील या मूत्रज वृद्धि में, लसिका का सञ्चय अधोभाग से प्रारम्भ होकर ऊपर २ बढ़ता जाता है, इसीसे प्रायः इसका आकार भाले के जैसा होता है। यह वृद्धि हाथों को

नरम मालूम देती है. इसमें कुछ विशेष पीड़ा या वेदना नहीं होती, किन्तु वजनदार (भारी) हो जाने पर रोगी को बेचैन कर देती है।

अब "अन्त्रवृद्धि" के विषय में भी विचार करना अत्यावश्यक है, अपने निदानादि ग्रन्थों में लिखा है—

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ।
धारणेरण भाराध्व विषमांग प्रवर्तनै ॥
क्षोभणैः क्षोभितोऽन्यश्च क्षुद्रांत्रावयवं यदा ।
पवना विगुणी कृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥
कुर्याद्वंक्षण संधिस्थो ग्रन्थ्याभंश्वयथुं तदा ।

अर्थात्—वात प्रकुपित करनेहारे आहार के सेवन से शीतल जल में घुस कर स्नान करने से, आये हुये मल मूत्रादिक वेगों को बल पूर्वक प्रवर्तन करने से, बहुत भार उठाने से, अधिक चलने से, अङ्गों को विषम चेष्टाये (टेढ़े तिरछे होकर अङ्गों को हिलानादि, बलवान के साथ कुश्ती या भारी धनुपादिपदार्थों को उठाने से) इत्यादि कतिपय कारणों से अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हुई वायु छोटी आँतों के प्रदेश को दूषित कर उसको स्वस्थान से नीचे जा गिराती है। जब वे नीचे वृषण और कोषकी संधियों में पहुँच जाती है तब वहां गांठ जैसी सूजन उत्पन्न हो जाती है. इसे ही अन्त्रवृद्धि कहते हैं। आगे और भी इसके विषय में लिखा है, कि यदि इस अन्त्रवृद्धि की उपेक्षा की जावे, अर्थात् शीघ्र ही इसकी चिकित्सा

न की जाय, तो यह अँतड़ी अण्डकोषों में प्राप्त होकर तहां वृद्धि को करती है, उस समय पेट में अफारा, मलावरोध तथा चढ़े हुये वृषणों में पीड़ा और शरीर की जकड़न ये लक्षण होते हैं। इस वृद्धि को हाथ से दबाने पर घुर २ या गुड़ २ शब्द करते हुये अँतड़ी अन्दर को पैठ जाती है और छोड़ देने पर फिर पूर्ववत् अंडकोष को फुलाकर उसी में प्राप्त हो जाती है। जैसा कि लिखा है,

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मान रुक्स्तंभवती सवायुः।
प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान् प्रयाति प्रध्मापयन्नयति पुनश्चमुक.॥
माधवनिदान

यहां पर यह बात ध्यान रखने योग्य है, कि आयुर्वेदीयमतानुसार अन्त्रज वृद्धि और मूत्रज वृद्धि दोनों वात के ही कारण से होती हैं। केवल उत्पत्ति के हेतु अलग २ हैं। अर्थात् मूत्र संधारणादि से कुपित हुआ वात मूत्रज वृद्धि करता है और भार हरण विषमांग प्रवर्त्तनादि से कुपित वायु अन्त्रज वृद्धियां हर्निया (Hornia) को करता है। जैसा कि लिखा है—

मूत्रांत्रजावप्यनिलाद्धे तुभेदस्तु केवलम्।

अन्त्र वृद्धि में वृषणांतर्गत अण्ड या ग्रन्थी (गुठली) में किसी प्रकार का सोजा या (Inflammation) वगैर: नहीं होता है, और जो वेदना होती है, वह सदैव नहीं होती, किन्तु जब होती है, तब बड़ी असह्य होती है। इसकी उत्पत्ति पाश्चात्य वैद्यक के अनुसार बड़ी मनोरंजक है, गर्भ स्थित बालक के ५

पांचवें मास में वृषण की गोलियां वृषणों में उतरती हैं। किसी २ का मत है कि ५ या ६ मास हो जाने पर ये गुठलियां उदरगह्वर से वस्तिगह्वर में आती हैं, फिर ७ सातवें मास में कमर के सामने, और ८ वें मास में अपने वृषण स्थान में उतर पड़ती हैं। ये ग्रन्थियां जिस मार्ग से या छिद्र से होकर उतरती हैं, वे छिद्र कुछ काल के पश्चात बन्द हो जाते हैं, किन्तु किसी २ के शरीर में वे छिद्र बराबर बन्द न होकर कुछ खुले से रह जाते हैं, ऐसे मनुष्य या मनुष्यो के अधिक भारवहन विषमांग प्रवर्तन कांसने आदि चेष्टाओं से (इन कारणों से वात प्रकुपित होने के कारण) वे छिद्र और भी बड़े हो जाते हैं, तथा उन्हीं के द्वारा, काल पाकर. बड़ी अँतड़ियों का (अथवा छोटी अँतड़ियों का भी) कुछ भाग नीचे उतर कर सरल मार्ग से वङ्क्षण सन्धि से होते हुये वृषणों में प्रवेश कर जाता है। ऐसी स्थिति में जब उन छिद्रों में आकुंचन की क्रिया होती है (क्योंकि संकोचन प्रसरणादि क्रिया अपने शरीर के प्रत्येक भाग में हुआ ही करती है) तब उन अन्तड़ियों में दबाव के पड़ने से अत्यन्त वेदना होती है। एक बार वृषणों में उतर आई हुई अँतड़ी के भाग को फिर से पूर्ववत दाब कर ऊपर चढ़ाना बड़ा मुश्किल का काम है। तथापि उष्ण जल में बैठाकर अथवा वृषणों पर वर्फादि का प्रयाग कर छिद्रों के मार्ग में जो उस पर फाँसी सी बैठती है, वह ढीली की जा सकती है, तथा अँतड़ी के उस भाग को कुछ संकुचित कर युक्ति पूर्वक ऊपर को चढ़ाया भी जा सकता है। किन्तु यदि उपरि निर्दिष्ट फांसी का दबाव

अधिक ज़ोर का हो और चिकित्सा करने में अत्यधिक विलम्ब हो गया हो, तब तो शस्त्र क्रिया करना ही अधिक उपादेय होता है। अन्त्रवृद्धि के तीन प्रकार देखने में आते हैं-(१) एक तो वह है, जिसमें उतरी हुई अन्तड़ी का भाग दबाने से धीरे २ गुड़ २ शब्द करते हुये ऊपर को चला जाता है। रोग की इस प्रथमावस्था में पट्टा (Truss) बगैर बांधने से, रोग धीरे २ दुरुस्त हो सकता है। (२) दूसरी अवस्था वह है जिसमें वह भाग ऊपर को नहीं चढ़ाया जा सकता। पेट में शूल चूसनवत् पीड़ा आध्मान मलबद्धता इत्यादि नाना प्रकार के उपद्रव खड़े हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में उस अँतड़ी को ऊपर स्वस्थान में पहुँचाने का प्रारम्भिक उपाय तो करना ही चाहिये, किन्तु साथ ही साथ उसमें सोखा न आने पावे, इसका भी इलाज करते रहना चाहिए। रोगी को अल्पाहार करना चाहिये, तथा पड़े रहना चाहिये, इधर उधर घूमना या खड़े रहना एक दम बन्द कर देना चाहिये। (३) तीसरे प्रकार में वह अन्तड़ी ऊपर तो नहीं जाती है, प्रत्युत उसका कुछ भाग वंक्षण संधि के अभ्यन्तर छिद्रों में दृढ़ता के साथ अटक जाता है, तथा अत्यन्त वेदना को करता है। कोई इसी को ब्रघ्न या बद कहते हैं। इस अवस्था में अन्तड़ी का वही स्थान भ्रष्ट भाग सूज उठता है, यथा पूर्णतया छिद्रों में फंस जाता है। उदर में विशेष कर आध्माम शूल होता है; दस्त की हाजत होती है, किन्तु दस्त नहीं उतरता या बहुत ही कम होता है। दिन में कई बार क़य होते हैं। पहिले आमाशय स्थित आहार मुख द्वारा बाहर

निकल पड़ता है, फिर अम्ल तथा तिक्त ऐसा पित्त निकलता है, फिर कुछ श्वेत पदार्थ (कदाचित् यह रस हो) निकलता है. बाद में मल के समान दुर्गन्धित पदार्थ निकलता है, अर्थात् पुरीषावरोध-जन्य उदावर्त के प्रायः सब लक्षण दिखाई पड़ते हैं ×।

पश्चात वृषण या वंक्षण स्थित सोजा पत्थर के सदृश कड़ा हो जाता है, किन्तु धीरे धीरे बढ़ता ही जाता है, रोगी का चेहरा काला पड़ जाता है, वमन बन्द नहीं होने, रोगी को किसी प्रकार की चैन नहीं पड़ती, वह निराश हो जाता है। नाड़ी की गति मन्द किन्तु रह रह कर चपल होती है। हिक्का भी अपना जोर अलग बतलाती है।

कुछ काल के पश्चात् वह सूजन या गाँठ कुछ श्याम वर्ण की होती है, वेदना कुछ शमन हुई सी जान पड़ती है, रोगी की जीवन आशा कुछ पल्लवित सी होती है, किन्तु तुरन्त ही यमराज उसका समूल नाश कर देते हैं।

अन्त्रवृद्धि का प्रकार स्त्रियों में भी होता है, किन्तु उनके यह जांघ या वंक्षण में ही होता है, जिसे हम व्रध्न या कुरण्ड कह सकते हैं। यह "व्रध्न" नामक रोग मनुष्योंमें ही होता है और आज कल दूषित स्त्रियों के संसर्ग से ही इसकी उत्पत्ति मानी जाती है। प्रचलित भाषा में इसे बद कहते हैं यह उपदंश जनित मानी जाती है

× "आटोप शूलौ परिकर्तिकाच संगः पुरीषस्य यथोर्ध्ववातः।
पुरीष मास्यादथवा निरेति पुरीष वेगेऽभिहते नरस्य ॥

किन्तु ध्यान रहे, उपदंशजनित ब्रध्न (वद या बाघी) शीघ्र ही चिकित्सा करने से पक जाती है. किन्तु अन्त्रवृद्धि जनित पकती नहीं और उपदंश जनित बाघ स्त्रियों को नहीं होती, अंत्र वृद्धि जनित स्त्रियों को होती है।

अपने यहां वृद्धि रोग दूपित स्त्री के संसर्ग से भी माना गया है ÷ और ब्रध्न रोग, वृद्धि जिस स्थान में होती अर्थात् वृषण के समीप ही वंक्षण में होती है (जैसा कि भाव मिश्रजी का कथन है अथ ब्रध्नस्यापि वृद्धिसमीपोत्पत्त्वादत्रतन्निदान लक्षणमाह) और जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं. अन्त्रवृद्धि से इसका खास सम्बन्ध है, अतएव ब्रध्न विषय में केवल आयुर्वेद की ही सम्मत्ति का संक्षेप में विचार कर चिकित्सा का विचार करेंगे।

बङ्गसेन जी का मत है, कि यदि बाघी में व्यथा न हो तो उसे केवल "कुरण्ड" कहना चाहिये, अन्यथा उसे "ब्रध्न" कहना चाहिये।

यथा—"निर्व्यथंच कुरंडं स्याद्ब्रध्नं भवति सव्यथम्।
अयमेवानयोर्भेदो ह्यन्यत्सर्व सम तथा ॥

अन्य मतसे, तथा हमारे मत से भी "कुरण्ड" का "ब्रध्न" से कुछ सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। "कुरण्ड" केवल "अण्ड" वृषण सम्बन्धी "वृद्धि" या 'हायड्रोसील" को ही कहना युक्त

÷ दुष्टदारा विहाराश्च वातो बस्तिगतो भृशम् ॥
अंडस्थानं च संप्राप्य तस्य वृद्धि करोतिवै ॥ हारीत

होगा। विजयरक्षित जी तथा श्रीकंठदत्त जी ने श्रा० मा० निदान के टीका में लिखा है-वृद्धि "कुरण्डोऽभिधीयते" वृद्धिः 'कुरण्ड' इतिलोके"॥

"अध्न" रोग के विशेष लक्षण ये हैं—ज्वर, सूजन में अत्यन्त पीड़ा और अङ्गों में दाह, अशक्ति तथा ग्लानि होती है। अंगरेजी में इसे (Bubcnocele) ब्यूबॉनोसील और अरबी में "बदन काना" कहते हैं।

एक शिरा और वातशिरा—अण्डवृद्धि सम्बन्धी ये दो रोग और हैं। कहा जाता है कि पूर्णिमा या अमावस्या अथवा दशमी और एकादशी तिथि में विशेष कर एक प्रकार की कोष वृद्धि होती है, इसमें कम्प और संधि समूह अथवा सर्वाङ्ग में वेदना इत्यादि लक्षणों से युक्त प्रबल ज्वर, रोगी को चढ़ आता है, किन्तु २-३ दिन बाद वह स्वयं दूर होजाता है। इसमें कभी कभी एक ही ओर के कोष में वृद्धि या सूजन होती है, जिसे एक शिरा और दोनों ओर वृद्धि हो तो वात शिरा कहते हैं।

अब क्रमानुसार सब की सरल द्रव्य चिकित्सा आगे दी जाती है।

(१) अद्रख—आर्द्रक या अदरख (म०-आलें) विशेषकर रूक्ष और वात तथा कफ नाशक होने से, इस रोग पर इसका अच्छा उपयोग होता है। वात की वृद्धि शीघ्र दूर होती है।

अदरख का स्वरस २-३ मासा तक एक मा० शहद डाल कर, नित्य सवेरे सेवन करे। एक मास के अन्दर लाभ

होता है । यथा प्रमाण –"आर्द्रकस्यरसः क्षौद्र युक्तो वृषणवातजित्" ।

(२) आक–(आकड़ा, मदार या रुई)–विशेषतः कृमिनाशक, कफ नाशक और ग्राहि होने से, इसका भी उत्तम उपयोग इस रोग पर होता है ।

आक के पत्ते २ भाग में शुद्ध सेंधानमक १ भाग एकत्र कर, सिल पर महीन पीस, थोड़ा गर्म कर सुखोष्ण लेप करने से अंडवृद्धि शांत होती है और फिर कभी नहीं होती, जैसा कि कहा है :—

मर्दयित्वार्कपत्रैस्तु तापितं चारु सैंधवम् ।
तेन लिप्तं शमंयाति कुरंडं न पुनर्भवेत ॥

(३) आम्र—आम्र के पेड़ में जो गांठ हो उसे ले आवें । उस गांठ को गौमूत्र में घिसकर गाढ़ा २ लेप बढ़े हुए अंडपर कर देवे और ऊपर से खूब सेकें, यह योग शं० दा० पदेजी का बताया हुआ है ।

(४) इन्द्रायन (इन्द्रवारुणी, मं०–कावंडल) यह तीव्र रेचक कृमिनाशक उष्णवीर्य होने से कफनाशक और लघु । इ० गुण सम्पन्न होने से वृद्धि का नाशक है ।

(अ) इन्द्रायन के जड़के चूर्ण को गायके दूध में पीसकर यथोचित प्रमाण से एरंड (अण्डी या रेंडी) का तैल मिला कर सवेरे केवल ७ दिन पर्यन्त पान करने से अंडवृद्धि रोग नष्ट होता है । यह अनुभूत योग है । शास्त्र में भी लिखा है:—

गधर्व तैलसंमिश्रं विशाला मूलजं रजः ।
क्षीरेण पीतं समादाद्वृद्धि हन्ति न संशयः ॥

(आ) छोटे बालकों की अन्त्रवृद्धि या कुरंटक रोग (देखो-नीचे नोट पर ३) पर भी इन्द्रायन अच्छा काम देता है । योग उपरोक्तानुसार ही देना चाहिये । यथोक्तं—

इन्द्रवारुणिका मूलं तैलं पुष्करजं तथा ।
संमर्द्य च स गोदुग्धंपिवेज्जंतुः कुरंट के ॥

बृ० नि० रत्नाकर

(इ) थोड़े ही दिन की अण्डवृद्धि अथवा कुरण्ड इस उपरोक्त इन्द्रायन के योग से केवल तीन दिन में ही भाग जाती है । जैसा कि लिखा है:—

वातारितैल मृदितं सुरवारुणीजं ।
मूलंनरः पिवति योमसृणं विचूर्ण्य ॥
गव्येनिधाय पयसित्रिदिनावसाने ।
तस्यप्राणश्यति कुरंडकृतोविकारः ॥

बृ० नि० रत्नाकर

(५) एरण्ड (अरण्डी या रेंडी) विशेष गुण उष्ण, शूल, सूजन अफरा तथा आमवात नाशक है ।

(अ) अण्डवृद्धि से पीड़ित रोगी को चाहिये, कि नित्य सवेरे यथोचित प्रमाण में एरंडी का तैल दूध में डालकर पीवे । इसकी मात्रा का प्रमाण १ तोला से ३ तोले तक है । यदि इसका तैल पीते

समय उबकाई आती हो और पिया न जाता हो तो तैल पीने के पहिले छांछ के २-३ कुल्ले कर लेने से तैल का अरुचिकर स्वाद कुछ भी नहीं होता। रोज दोनों समय इसी तैल की मालिश अण्ड पर करे, एक मास तक इस प्रकार सेवन करने से लाभ अवश्य होता है।

"सक्षीरं वा पिवेत्तैलं मासमेरंड संभवम्"

"सिद्धौषधि प्रकाश" में लिखा है "दुग्ध में एक तो० एरंड तैल ३० दिन सेवन करने से वायु की अंत्रवृद्धि जावे यहां "अन्त्रवृद्धि" के स्थान में अडवृद्धि होना चाहिये। क्योंकि अन्त्र-वृद्धि तो वायु के कारण ही से होती है। पित्त और कफ की अन्त्र वृद्धि नहीं होती और उपरोक्त योग वात की अण्डवृद्धि पर जितना लाभ पहुंचाता है उतना अन्त्रवृद्धि पर नहीं पहुँचाता।

(आ) यथोचित प्रमाण से श्वेत एरंड के तैल में शहद मिला-कर पीने से अण्डवृद्धि, अपची और ग्रन्थि दूर हो जाते हैं। यथा प्रमाण—

कुरण्डमपचीं पित्त ग्रन्थि च हरति क्रमात्।
मधु मिश्र सितैरण्डं तैलं पीतं च मात्रया॥

हितोपदेश वैद्यक

(इ) एरंड के तैल में शुद्ध गूगल (१ माशे से ३ माशे तक) मिलाकर तथा उसमें थोड़ा गोमूत्र डालकर नित्य सवेरे पान करने से बहुत दिनों की अण्डवृद्धि (विशेपकर वात की) तत्काल नष्ट होती है। यथा प्रमाण—

गुग्गुलं तैलमुरुबूकं वा गौमूत्रेण पिबेन्नरः
वातवृद्धि निहंत्याशु चिरकालानु बंधिनीम्
बृ० नि० रत्नाकर

इस प्रयोग के सेवन से अन्त्रवृद्धि (Hernia) भी नष्ट हो सकती है।

(इ) एक या दो तोला अरण्डी के तैल में उतना ही गौमूत्र मिलावे और फिर उसमें शुद्ध पारा और गंधक की कज्जली १ से ४ रत्ती तक (बलावस्थानुसार) अच्छी तरह घोलकर सवेरे सेवन करने से शीघ्र अण्डवृद्धि का नाश होता है। यथोक्तं—

गोमूत्रैरण्ड तैलाभ्यां रस गन्धक कज्जली।
पीत्वा निहंति सहसा वृद्धि वृषण संभवाम्॥
नि० रत्नाकर

(उ) श्वेत एरण्ड की जड़ टेंटू (श्योनाक, अरलू) की जड़, हरड़, बहेड़ा, आमला और वच इन सब को सम भाग लेकर, कांजी में पीस कर लेप करने से अण्डकोषों की पीड़ा दूर होती है:—

श्वेतैरण्ड शिफामूलं टिंटुका त्रिफला वचा।
कांजिकापिष्ट मेतस्य लेपोयं मुष्कशूलहृन्॥
हितोपदेश वैद्यक

(ऊ) एक या दो तोला एरण्डी के तैल में इन्द्रायन की जड़ का चूर्ण २ मासा मिलावे, फिर उसमें गाय का घी एक तोला और दूध आधपाव मिलाकर नित्य सवेरे पान करने से अत्यन्त दुस्तर अण्डवृद्धि रोग नष्ट होता है।

देखिये प्रमाण—

विशालायाः शिफा चूर्ण मेरंड तैल मर्दितम् ।
गव्याज्य पयसा पीत कुरंडं हन्ति दारुणम् ॥

हितोपदेश वैद्यक

(ए) श्वेत एरण्ड के तैल २ तोला में हरड़ का चूर्ण २ मासा मिलाकर मन्दाग्नि पर थोड़ा पका लेवे, फिर उसमें गोमूत्र ५ तोला मिलाकर पान करने से रोगी रोग मुक्त हो जाता है । यथा—

पथ्याचूर्णैः सितैरण्ड तैलं पक्वं निवारयेत ।
कंपं वृषण वृद्धि च पीतं गोमूत्र संयुतम ॥

रोगी को कंप, जो कि विशेषकर वातवृद्धि में कभी देखा जाता है, वह भी इस योग के सेवन से दूर हो जाता है ।

(ऐ) एरण्ड का तैल १ या २ तोला में हरड, बहेड़ा आमला अरलू, दन्ती की जड़, सोंठ, मिर्च, पीपल, नील, की जड़ और अड़ूसा इन १० द्रव्यों का सम भाग से किया हुआ महीन चूर्ण १॥ से ३ मासे तक डालकर सवेरे चन्द रोज़ पीने से अण्डवृद्धि दूर होती है । अनुभूत है । प्रमाण देखिये—

त्रिफला टिंटुका दन्ती त्रिकटुर्नीलिकावृषा ।
भुक्तमेरण्डतैलेन चूर्णमेषां कुरण्डहृत ॥ हि० वैद्यक

(६) करञ्जा (सं० कंठकरञ्ज कुबेराक्षी इ० । म०—सागर गोटा) कृमिनाशक, उष्णवीर्य ग्राही इत्यादि गुण विशिष्ट होने से अण्डवृद्धि पर बहुत अच्छा लाभ पहुँचाता है ।

(अ) करञ्ज की मींगी निकाल कर, जल के साथ सिल पर पीसकर तथा थोड़ा गरम कर वृद्धि पर लेप कर देने से वृद्धि कम हो जाती है।

अथवा—चांवल के धोवन में, करञ्ज की जड़ को घिसकर लेप करने से भी बहुत कुछ फायदा होता है—यथा प्रमाण—

तंदुल वारि विमिश्रं घृतपूर सञ्ज्ञमुच्यते लोके।
तन्मूल पिष्ट लेप कुरण्ड गलगण्डयाः कुर्यात ॥

नि॰ रत्नाकर

(आ) करञ्ज फल को आग में भून कर, चूर्ण कर लेवे, १ मा॰ चूर्ण दिन में २ वार, १ तो॰ घी के साथ खाने से तथा साथ ही (अ) में कहा हुआ लेप करने से वृद्धि, शोथ वेदना अत्यन्त शीघ्र दूर होती है।

(७) गन्धाबिरोजा (सरल का रस) उष्णवीर्य, कृमिनाशक, कफनाशक तथा शोथनाशकादि गुणों से युक्त होने से वृद्धि पर अनुभूत है।

एक अच्छे महीन तथा मजबूत कपडेपर गन्धाबिरोजा लेप कर तथा उसे किंचित् उष्ण कर, वृषण वृद्धि पर चिपका देवे और ऊपर से लँगोट कस लेवे, १ या २ दिन में ही वृद्धि उतर जावेगी, दर्द रफा हो जावेगा।

यदि वृषण पर मामूली शोथ या सोजा होगा, और वह कच्ची दशा में होगा तो गन्धाबिरोजा के उपरोक्त प्रयोग से वह बैठ जावेगा और यदि सोजा पक गया होगा तो तत्काल

फूट कर बह जावेगा, सूजन उतर जावेगी। हमारा यह कई बार का अनुभव किया हुआ है। पाठकों को मालूम होगा कि गन्धाबिरोजा से ही तारपीन का तेल बनाया जाता है जो सूजन और दर्द को शमन करता है।

(८) गेहूं की जड़—गेहूं (गोधूम) की जड़ का चूर्ण २ मा० भेड़ के दूध में पीस कर, किंचित् उष्ण कर लेप करने से अवश्य ही अण्डवृद्धि दूर होती है प्रमाण—

गोधूम मूलिका चूर्ण मेषी दुग्धेन मर्दितम् ।
उष्णेन तेन लिप्तो वां कुरण्डो नश्यति ध्रुवम् ॥

हि० वैद्यक

(९) गोबर का रस निकालकर (गोबर ताजा होना चाहिये) कांजी मिलाकर; उसमें कूट जीरा डालकर घोटे, पश्चात् (कुछ उष्ण कर) लेप करने से अत्यन्त दुस्तर अण्डवृद्धि भी दूर हो जाती है, ऐसा शास्त्रकार का कथन है यथा—

गोमयस्वरसोन्मिश्रं कांजिकेनाति मर्दितम् ।
कुष्टं जीर प्रलेपेन कुरंडं हन्ति दुर्वहम् ॥

हि० वैद्यक

(१०) तमाखू—करंजुआ (करंज) की मींगी (मगज) एरण्ड के तैल में खरल कर उसे तमाखू के पत्ते पर लेपकर, वृषण पर बांध देवे। थोड़ी ही देर में जी मिचलावेगा और क्य भी हो जायगी, यदि घबराहट अधिक हो तो बांधा हुआ खोल डाले, पुनः थोड़ी देर में बांधे। इस प्रकार दिन में

२-३ बार बांधे और खोले। १-२ दिन में ही अपूर्व लाभ होगा।

अथवा—तम्बाखूकी कली और तेज चूना, एकत्रकर, गौमूत्र के साथ खरल करें। फिर उसका लेप वृषण पर करें, और सुहाता २ सेंक करें थोड़ी देर में उपरोक्त अनुसार कय वगैरह होना सम्भव है, किन्तु एक या दो दिन में ही इसका चमत्कार दिखाई देता है, साधारण वृषण वृद्धि तो तत्काल शमन हो जाती है। इस प्रयोग से मूत्रजवृद्धि (Hydrocele) भी नष्ट होते देखी गई है, अभ्यन्तरिक शिराओं का सचित विकृत जल बाहर निकल पड़ता है, किन्तु पूर्णतया रोग दूर होने के लिए एक बात और करनी पड़ती है—जब उपरोक्त प्रयोग से वृषण के अन्दर का जल किसी प्रकार बाहर निकल जावे तब तुरन्त ही पुन्नाग (सुलतानी चम्पा) के वृक्ष की अन्दर की छाल, गोमूत्र के साथ सिलपर खूब महीन पीस कर तथा किंचित् उष्ण कर, वृषण पर लेप करना चाहिये और ऊपर से पट्टा कस देना चाहिए, इस पट्टे को ३ दिन तक नहीं खोलना चाहिये। कोई २ इस पट्टे को ८-१० दिन तक बांधे रहने की सम्मति देते हैं।

अथवा—साधारण दोषजन्य वृषण वृद्धि पर, कई वैद्य

तम्बाखू के पत्ते पर शिलारस चुपड़ कर बांध देते हैं अथवा केवल तम्बाखूका पत्ता बांधने को कह देते हैं इससे भी कम ज्यादा लाभ होता ही है।

(११) दारुहल्दी—उष्णवीर्य, कफनाशक, तथा नानाप्रकार के त्वचादोषों को हरन करने वाली है,इसके और हल्दी के गुण समान हैं। अण्डवृद्धि पर इसका इस प्रकार शास्त्रोक्त प्रयोग किया जाता है-दारुहरिद्रा का चूर्ण १॥ या २ मा० गोमूत्र ५ तो० के साथ मिलाकर सवेरे और शाम पीनेसे कुछ दिनों में वृद्धि दूर हो जाती है। यथा—

"दार्वीचूर्णं गवांमूत्रैर्निपीतं मुष्क वृद्धिजित्।"

नि० रत्नाकर

(१२) निर्गुण्डी (सम्हालु) अत्यन्त वातहारक है। वृषण वृद्धि पर इसका यों प्रयोग करना चाहिये। निर्गुण्डी के पत्ते जल के साथ सिल पर पीसकर तथा किञ्चित् जल उष्ण कर, वृषण पर बांध देवें, शीघ्र ही वात की वृषण वृद्धि शमन हो जावेगी।

अथवा—किसी हांडी में निर्गुण्डी के पत्ते भर कर आग पर धर देवें, जब वह मटकी खूब लाल हो जाय तब आग पर से उतार कर उसके अन्दरके गरम २ पत्ते, सुहाते सुहाते वृषण पर बांध देवें। इससे भी वातजन्य वृषण वृद्धि उतर जाती है।

अथवा—किसी चौड़े मुख के पात्र में, निर्गुण्डी के पत्ते धर कर उसमें सब पत्ते बूड जावें इतना जल डालकर, आग पर चढ़ा देवें तथा पात्र का मुख ढांप देवें जब खूब जल खौलने लगे तब रोगी के वृषणों पर उसका अफारा या वाष्प स्नान कराने से रोग शीघ्र ही जड़ मूल से नष्ट हो जाता है।

(१३ बच—बच का चूर्ण १ तो० में सेंधा नमक १ तो० और घी ३ तो० मिलाकर तथा अग्नि पर गरम कर वृषण पर प्रलेप करने से अण्डवृद्धि शांत होती है, ७ दिन में फायदा होता है।

सैंधवं सर्पिषा पक्वे क्षिप्त्वा ऽग्रांच धारयेत् ।
सप्ताहमेतयोर्लेपात्कुरण्डा गच्छति ध्रुवम् ॥

(१४) भारङ्गी—उष्ण, वीर्य, सूजन, वाव, कृमि, दाह आदि नाशक है, अण्डवृद्धि पर इसका शास्त्रोक्त प्रयोग इस प्रकार किया जाता है-भारंगी की जड़ चावलों के धोवन में पीस कर गाढ़ा-गाढ़ा लेप करने से कुरण्ड गण्डमाला आदि रोग नष्ट होते हैं।

पिष्टं ब्राह्मण यष्टिकाया मूलं समं तंदुल धावनेन
हन्ति लेपान्दल गण्डमाला कुरण्ड मुख्यान खिलान् विकारान् ॥

(१५) भिलावा (भल्लातक) गरम, ग्राही, फूल, शोफ, तथा कृमि नाशक आदि गुण सम्पन्न होने से अण्डवृद्धि पर

अच्छा काम करता है। भिलावा (फल) और हल्दी सम-भाग एकत्रकर थोड़ेसे जलके साथ पीसकर वृषण पर लेपकर देवें और गोबरी (कंडे) की आंच से सेकें।

अथवा—भिलावे के पत्ते दो भाग और हल्दी १ भाग लेकर थोड़े से जल के साथ सिल पर पीसकर और किंचित उष्णकर वृषण पर लेप करें। इस प्रकार ७ दिन करना चाहिये अवश्य फायदा होता है।

(१६) रास्ना—"रास्नोष्णा वात शोथामवात वातामयाञ्जयेत्"
शोडल नि०

अर्थात्—रास्ना गरम है, वात, सूजन, आमवात तथा ८० प्रकार के वात रोगों को नष्ट करती है। इसका उप-योग अंत्रवृद्धि और विशेष कर वात जन्य वृषण वृद्धि पर रामबाण होता है।

रास्ना, मुलहठी, गिलोय, एरंडमूल, पटोलपत्र, रेणुका, बीज, खरेंटी और अड़ूसा इन ८ द्रव्यों को समभाग लेकर (कोई २ वैद्य रास्ना २ भाग तथा शेष द्रव्य एक २ भाग लेते हैं) सब कूट चूर्ण कर लेवें। १॥ तोला चूर्ण लेकर किसी मटकी में पाव भर जल के साथ डालकर अष्टमांस काढ़ा तैयार कर छान लेवें और उसमें १ मा० चित्रक का चूर्ण तथा एरंडी का तैल मिलाकर सवेरे सेवन करें। यह मात्रा बड़े मनुष्य की है रोगी की अवस्था-नुसार इसमें फेर फार कर सकते हैं। यह उत्कृष्ट योग है हमारा कई वार का अनुभूत है। इसका शास्त्रोक्त प्रमाण भी देख लीजिये।

रास्ना यष्ट्यमृतैरंड पटोलं रेणुका बला।
वृषःस्यात्क्वथितो वृद्धिं हन्याच्चित्रक तैलवान ॥

नि० रत्नाकर

(१७) लज्जालु (छुई मुई लाजवती) शीतल, सूजन, दाह, रक्तविकार आदि नाशक है। इण्डियन प्लांट्स नामक ग्रन्थ में इसके मूल के विषय में लिखा है।

The root of the Plant Contains a Peculiar tannin. It is Considered as resolvent and alterative useful in discures arising from Corrupt blood and bile.

अर्थात्—लज्जालू की जड़ में एक विचित्र ग्राहक शक्ति है। यह द्रावक एवं शोथ हर है और शरीर के किसी विशिष्ट भाग में किसी प्रकार का भी फेर फार न करते हुये विकृत दोषों को निकालकर पूर्ववत् स्थिति में ले आने की शक्ति इसमें है विशेषकर विकृति रक्त तथा पित्त से उद्भुत रोगों पर इसका बहुत अच्छा असर पड़ता है।

(अ) वृषण वृद्धि पर इसका शास्त्रोक्त विधान यों है—लज्जावती की जड़ (२ भाग) और गिद्ध की विष्टा (१ भाग) इन दोनों को एकत्र पीसकर लेप करने से कुरंड तथा योनि रोग अवश्य ही नष्ट होते हैं।

लज्जालुमूल गृद्धस्य विट्प्रलेपः प्रयोजितः ।
कुरण्डं योनि रोगञ्च नाशयेद विकल्पतः ॥

बगसेन

(आ) मूत्रजन्य वृद्धि (Hybrocele) पर लज्जालू के पत्ते जल के साथ पीसकर प्रलेप करने से अपूर्व लाभ होता है।

(१८) सरफोंका (यरपुंखा म–उन्हाली) उष्णवीर्य है तथा वात; कृमि, विष, रुधिर विकारादि नाशक है। सराफोंका दो प्रकार का होता है सफेद और लाल। लाल की अपेक्षा सफेद सरफोंका (जिसका फूल श्वेत होता है चुप पृथ्वी पर फैला हुआ होता है पत्ते लाल सरफोंके की अपेक्षा कुछ छोटे होते हैं और फलियों पर रुआं नहीं होता) अधिक गुणवाला होता है तथा रसायन कार्यमें यह श्रेयस्कर होता है। कहा भी है—

श्वेतायाः शरपुंखाया रक्तात्ताह्यधिका गुणाः ।

नि॰ रत्नाकर

श्वेता त्वेषा गुणाढ्या स्यात्प्रशस्ता च रसायने ॥

रा॰ नि॰

वृषण वृद्धि पर यह अच्छा लाभ पहुंचाता है—इसके मूल का चूर्ण २ से ४ मा॰ तक केवल जल के साथ एक या दोनों समय पीने से लगभग १ मास में पूरा फायदा होता है।

(१९) सहिजना—(सं॰–सुभांजना, शिग्रु इ॰ म॰ शेवगा) गरम रुक्ष है कृमि, वात की वेदना, दाह, शोथ आदि

निवारक है। इसके भी लाल और सफेद ऐसे विशेष कर (नीला भी कहीं २ होता है) दो भेद हैं सफेद फूल का सहिजना बहुतायत से पाया जाता है। गुणमें प्राय: दोनों समान हैं। इनकी छाल और पत्तों में पीड़ा और सूजन को दूर करने का अपूर्व गुण है। कहा भी है—"शिग्रु वल्कल पत्राणां स्वरसः परमार्ति हृत्॥"

रा० नि०

कफ वात जन्य अंडवृद्धि तथा शोथ इसके निम्नोक्त प्रयोगों से शीघ्र नष्ट होती हैं।

(अ) सहिजने की छाल को घृत में पीसकर अंडवृद्धि पर प्रलेप करे। यथा—

शिग्रु त्वक्सर्पिषैः पिष्टैः शोथ. श्लेष्मानिलापहः। बंग०

(अ) सहिजिने की छाल (२ भाग) और सरसों (१ भाग) जल के साथ पीसकर लेप करे। यथा—

शिग्रुत्वक्सर्षपैर्लेपाच्छोथश्लेष्मानिलापह"। भा० प्र०

(२०) सेंधा निमक और कसीस सम भाग एकत्र खूब बारीक पीसकर (एरंड तैल के साथ) अंड पर लेप कर देवे तथा ऊपर से वस्त्र या लंगोट कस देवे। इस प्रकार कुछ दिनों के ही प्रयोग से अंडवृद्धि दूर हो जाती है जैसा कि कहा है—

सुपिष्ट्वैरंडतैलेन कासीसं सैंधवं समम।
लिप्त्वा तेना बरावद्धं कुरंडः क्षीयते क्रमात॥ हि० वैद्यक

अथवा—सेंधानमक का चूर्ण घी में पकाकर और उसमें बचका चूर्ण डालकर केवल सात दिन तक लेप करने से अंडवृद्धि शांत हो जाती है। प्रमाण के लिये देखो ऊपर न० १३।

अथवा—सेंधा नमक १ छटांक भेड़ के बाल १ छटांक और गाय का घी पुराना १ पाव इन तीनों को एकत्र कर तांबे के बर्तन में प्रति दिन धूप में रखकर तांबे के या पत्थर के बत्ते में खूब घिसना चाहिये। फिर उसी घी को वस्त्र में छान ले उसमें जो कुछ रोम निकले उनकों फैंक देवे। इस घृत को प्रति दिन प्रातः और सध्या के समय लगाने से अंडवृद्धि रोग में बहुत लाभ होता है। यह प्रयोग 'वैद्य' से लिया गया है और हमारा परीक्षित है।

(२१) हरड़ (हरीतकी) इसके गुणों से सब कोई परिचित हैं।

(अ) बाल हरीतकी काचूर्ण २ मा० श्वेत एरंडी केतैल में थोड़ी अग्नि पर पका कर बाद में थोड़ा सा गोमूत्र डालकर सवेरे सेवन करने से अंडवृद्धि दूर होती है।

अथवा—बड़े हरड़ का चूर्ण २ मासा केवल गोमूत्र के साथ पीने से भी लाभ होता है।

अथवा—हरड़ २ भाग बहेड़ा १ भाग और अंबरकटी (आमला) खूवा १ भाग त्रिफले का चूर्ण २ माशा सवेरे और शाम पाव भर गाय के दूध के साथ सेवन करे।

(आ) पारा गन्धक समान भाग लेकर कज्जली करे और दोनों के बराबर स्वर्णमाक्षिक लेकर एकत्र कर हरड़ के काढ़े

में ३ दिवस खरल करे फिर एक दिन एरंडी के तेल में खरल करे। वह वृद्धि नाशक रस सिद्ध है। अण्डवृद्धि का काल है। यथा—

रस गंधौ समौताभ्यां द्विगुण हेम माक्षिकम्।
पथ्यारसेनत्रिदिनं रुबुतैलेन वासरम्॥
मर्दितं सिद्धि मायाति रसेन्द्रो वृद्धि नाशनः॥ नि० र०

इसकी सेवन विधि—उपरोक्त रस १ रत्ती हरड़ का चूर्ण दो माशा में मिलाकर सवेरे सेवन करे अथवा यह रस १ रत्ती खिरैंटी के तैल के साथ या चने के काढ़े या हरड़ और जवाखार के चूर्ण के साथ या एरंड के तैल के साथ सेवन करें।

हम ऊपर सर्व सामान्य अण्डवृद्धि पर यथामति अनुभूत सरल प्रयोग बतला चुके हैं। अब नीचे कुछ दोपजवृद्ध मूत्र अन्य-वृद्धि, आंत्रवृद्धि और ब्रध्न पर सरल योग लिखकर इस बढ़े हुये लेख को समाप्त करेंगे।

वातज वृद्धि पर ऊपर दिये हुये योग नं० १, ४, १२, और १६ बहुत ही फायदेमन्द हैं।

कफ वृद्धिपर—(१) गौमूत्र में उष्णवीर्य अर्थात् गर्म औषधियों को पीसकर लेप करे। दारुहल्दी का काढ़ा गौमूत्र डालकर सेवन करे। यथा प्रमाण—

कफ वृद्धि मूत्रपिष्टैरुष्णवीर्यैः प्रलेपनम्।
पातव्यो मूत्र संयुक्तः कषायः पीत दारुणः॥ ७ वृ० नि०

(२) त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपल) और त्रिफला का काथ मिलाकर उसमें जवाखार तथा सेंधा नमक मिला पान करने से कफ की वृद्धि नष्ट होती है। यह विरेचन कफ जन्यवृद्धि को दूर करने में श्रेष्ठ है। यथा—

त्रिफला त्रिकुटाकाथं सक्षार लवणं पिवेत्।
विरेचन मिदं श्रेष्ठं कफ वृद्धिविनाशनम् ॥

(३) कफ वृद्धि के नाशार्थ अ० यो० माला अंक ६ पृष्ठ ११ में आक और इन्द्रायन के प्रयोग भी उत्तम हैं।

नोट—कफ की वृद्धि में कटु तीक्ष्ण और उष्ण औषधियों का प्रलेप रुक्ष द्रव्यों द्वारा स्वेद परिषेक तथा उपनाह ये सब उष्ण उपचार करना ठीक होता है। जैसा कि कहा हुआ है:—

लेपनः कटूतीक्ष्णोष्णः स्वेदनो रुक्षमेव च।
परिषेकोपनाहौ च सर्व मुष्ण मिहेष्यते ॥ बंगसेन ॥

कफ वृद्धि के लिये ये दो उष्ण प्रलेप और लिखे देते हैं। ये हमारे कई बार के अनुभूत हैं।

अ—बच और राई जल के साथ सिलपर पीस कर आग पर गर्म कर लेवे फिर सुखोष्ण (सुहाता हुआ) वृषण पर लेप कर देवे।

(आ) एरण्डबीज, पुनर्नवा, तिल और जव इनका महीन चूर्ण कांजी के साथ कुछ गर्म कर कफ वृद्धि पर लेप कर देवे।

पित्त जन्य वृद्धि जो चिकित्सा शास्त्र में पित्त ग्रंथि की कही

है वही चिकित्सा यथायोग्य विचारपूर्वक पित्त वृद्धि की करनी चाहिये । उदाहरणार्थ—

(१) जोंक लगाकर विकृत रक्त को निकलवा डालने से पित्त सम्बन्धी वृद्धि नष्ट होती है । अथवा लालचन्दन मुरेठी कमल खस और नीला कमल इनको दूध में पीसकर लेप करने से पित्त वृद्धि सूजन एवं दाह की पीड़ा शांति हो जाती है । यथा प्रमाण—

पित्त प्रंथिक्रमेणैव पित्त वृद्धिमुपाचरेत ।
जलौकाभिर्हरेद्रक्तं वृद्धौ पित्त समुद्भवे ॥
चन्दनं मधुकं पद्मं मुशीरं नील मुत्पलम ।
क्षीर पिष्टं प्रलेपेन दाह शोथ रुजापहम् ॥ (भा० प्र०)

(२) पंचक्षीरी वृक्षों (बड़ गूगल, पीपर, बोलिया, पं पल, और पारिस पीपल) की छाल सम भाग निकाल लेवें । उन्हें गीली अवस्था में ही सिल पर कुछ थोड़े जल के साथ पीसकर कल्क (चटनी) कर डालें । तदनन्तर उस कल्क में थोड़ा घी (गाय का हो तो बहुत अच्छा) मिलाकर प्रलेप करने से अच्छा फायदा होता है ।

उक्त लेप लगाने से पूर्व पंचक्षीरी वृक्षों की छाल को जलमें औटाकर इस क्वाथ को तैसे ही रात भर औस में रख देवे सवेरे मल छानकर जल का वृपण पर सिंचन करे । अच्छी तरह उसी जल से वृषणों को धोने के पश्चात् उक्त प्रलेप को लगाने से शीघ्र फायदा होता है । यह प्रयोग भी शास्त्रोक्त ही है ।

पंच वल्कल कल्केन सघृतेन प्रलेपनम् ।
एषामेव कषायेण शीतेन परिषेचनम् ॥ बंगसेन ॥

"पानंवापि कषायस्यपित्त वृद्धौ प्रशस्यते" इस पाठांतर के अनुसार कोई २ वैद्य पंचक्षीरी-वल्कल का क्वाथ रोगी को पिलाते भी हैं और अच्छा लाभ उठाते हैं ।

नोट—पित्तज अंडवृद्धि में शीतल जल में गोता मारना, शीतल द्रव्यों का सेवन करे तथा चन्दन कपूर इत्यादि शीतल पदार्थों का लेप करे । यथा हारीते—

शीततोयावगाहो वा शीत संसेवनं तथा ।
शीत शीतैश्च लेपश्च पित्तमुष्के प्रशास्यते ॥

रक्तज वृद्धि पर—बार २ जौंकें लगा के विकृत रक्त को निकाले शीतल लेप करे तथा वह पके नहीं ऐसा प्रयत्न करे ।

निशोथ के काढ़े में मिश्री और शहद मिला कर दिन में तीन बार पीना चाहिये । यदि रक्तज वृद्धि आम या पक्व गांठ के समान हो तो पित्तज ग्रन्थि पर जो शास्त्रोक्त प्रयोग हैं वे करें, एवं पित्तज वृद्धि में कथित चिकित्सा भी इसमें प्रशस्त है ।

यथा—

मुहुर्मुहुर्जलौकाभिः शोणितं रक्तजे हरेत् ।
पिवेद्विरेचनं वापि शर्करा क्षौद्र संयुतम् ॥
शीतमालेपनं शस्तं सर्व पित्त हरं तथा ।
पित्त वृद्धि क्रमं कुर्यादामे पक्के च रक्तजे ॥ भा० प्र० ॥

(१) कफ वात वृद्धि पर—त्रिफले के काढ़े में गोमूत्र डाल कर नित्य सवेरे पान करे और पथ्य से रहे।

यथा प्रमाण—

त्रिफला क्वाथ गोमूत्रं पिबेत्प्रातरतन्द्रितः ।
कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृषणोद्भवम् ॥ वंग ॥

(२) सहिजने की छाल को घृत में पीसकर प्रलेप करने से कफ वात की वृद्धि दूर होती है। यथा—

शिग्रुत्वक्सर्पिषैः पिष्टैः शोथः श्लेष्मानिलापहः ॥ वंग ॥

(३) हरड़ को गोमूत्र में पका कर फिर उसको तैल (रेंडी) में भून कर सेंधा ननक मिला कर नित्य सवेरे सेवन करे।

यथा—हरीतकीं मूत्र सिद्धां सतैल लवणान्विताम् ।
प्रातः प्रातश्च सेवेत कफ वातामया पहाम् ॥ वंग ॥

(४) त्रिकुटा, पीपलामूल, देवदारु और त्रिफला इनका क्वाथ बना उसमें जवाखार तीनों लवण डाल कर पान करे। इस प्रयोग के सेवन से यदि वृद्धि नवीन हो तो शीघ्र ही फायदा होता है जीर्ण वृद्धि पर तीन मास तक इसका सेवन करना चाहिये अवश्य फायदा होता है। यह प्रयोग भी वंगसेन का है।

यथा—व्यूषण पिप्पली मूलं देवदारू फल त्रिकम् ।
कषायं पाचयेत्तेषां सक्षार लवण त्रयम् ॥
त्रिभिर्मासैः प्रशाम्येत वृद्धिर्वातकफात्मजा ॥

नोट—यदि कफ वात के कारण वृषण में तीव्र शूल हो तो

खजूरों को लेकर बीज निकाल कर सिल पर थोड़े जल के साथ खूब पीसे। जब मक्खन के समान हो जाय तब उसमें कली का चूना (एक पाव खजूर कल्क में चूना १ मासा) मिलाकर खूब घोटें। जब एक दिल हो जाय तब एरंडी के पत्ते पर उस चूर्ण मिश्रित कल्क को फैला कर तथा धीरे से उठाकर वृषण पर लपेट कर किसी स्वच्छ वस्त्र से बांध देवे। इसके बांधने से वृषणान्तर्गत शूल (चिलक) सूजन तथा अन्य कफ वात जन्य विकार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। यदि वृद्धि कई वर्षों की हो तो कुछ दिन बांधने से और यदि नवीन हो तो तीसरी बार बांधने से अवश्य लाभ होता है।

मेद जन्य वृद्धि पर—यदि अंडवृद्धि मेद के कारण हुई हो तो अण्डकोष को स्वेदित कर (वफारा देकर) सुरसादि (निर्गुन्डी इत्यादि) औषधियों का लेप करे। तथा शिरो विरेचन द्रव्यों (पिप्पली विडङ्गापामार्ग शिग्रु सिद्धार्थक शिरीष मरिच करबीर विम्बीगिरि कर्णिकादीनि) को गोमूत्र में पीस कुछ गरम कर सुहाता २ प्रलेप करे।

अथवा * सुरसादिगण की समस्त औषधियों को (इस गण में से यथा शक्ति जो द्रव्य प्राप्त हो जायं उन्हीं को) गोमूत्र के साथ पीस कर तथा गरम कर सुहाता २ प्रलेप करने से मेद जन्य वृद्धि का नाम नहीं रहता।

---

*सुरसादिगण—सुरसयुग फणिज्ज' काल माला विडंगं।

यथा प्रमाणः—

स्विन्नं मेदः समुत्थन्तु लेपयेत्सुरसादिना ।
शिरो विरेचन द्रव्यः सुखोष्णैर्मूत संयुतै ॥ भा० प्र० ॥

मूत्रज वृद्धि—(१) नोट—प्रथम वफारा देकर फिर वस्त्र से लपेट देवे। थोड़ी देर वाद अण्डकोष की सीवन को एक तरफ नीचे के अंग में व्रीही मुख यन्त्र से (Teocor ट्र्युकर) वेध करे। यह वेधन क्रिया तव करनी चाहिये जब वृद्धि अण्ड की गोली तक पहुंच गई हो। अन्यथा वातज वृद्धि के ऊपर कहे हुये उपचारों को करे। अग्नि से दाग देना भी हितकारी है। यथा—

सस्वेद्य मूत्र प्रभव वस्त्र पट्टेन वेष्टिनम ।
सीवन्याः सर्वतोधस्ताद्व्ध्येद्व्रीहि मुखेन वै ॥
मुष्क कोशमगच्छत्या मण्डवृद्धौ विचक्षणः ।
वात वृद्धि क्रम कुर्य्यादाहस्तत्राग्निनाहितः ॥ वंगसेन ॥

खरवुस वृषकर्णी कटफलं कासमर्दः ॥
क्षवक सरसि भार्ङ्गी कामुका काकमाची ।
कुलहल विषमुष्टी भूस्तृणो भूतकेशी ॥

अर्थ—दोनों तुलसी, मिरच काली, अजवला, वायविडंग, मरुआ, मूशाकर्णी कायफल, कसोंदी, नकछिकनी, तु वर पत्रिका, भारङ्गी, रक्तमजरी, काह अलंवुसा वकायन, अतिछत्रा सुगंधवाला और जटामासी ये सब सुरसादिगण के द्रव्य हैं।

(२) वृषणांनर्गत जलको सुख पूर्वक बाहर निकालनेका सरल उपाय—इमली की पत्ती दो मुट्ठी भर लेकर किसी मिट्टी के पात्र में सब पत्ती डूब जावे इतना गो मूत्र डालकर धर देवे। जब गो मूत्र अट जावे, पुनः उतना ही डालकर औटावे. इस प्रकार तीन बार औटाकर तथा गरम २ पत्तियों को निकाल किसी वस्त्र में धर कर सुहाता २ वृषणों पर बांध देवे. ऊपर से लगोंट कस देवे। इस प्रकार ७–१४ या २२ दिन बांधने से कठिन से कठिन मूत्रज वृद्धि पर का जल निकलकर वृषण पूर्ववत् नरम हो जाते है।

यदि वृद्धि बहुत भारी कद्दू के समान हो गई हो तो उपरोक्त रीति से गो मूत्र औटाते समय जो वाष्प निकलती है उस पर वृषणों को धरने से एवं उसका वफारा लेकर वे ही पत्ते यथोक्त प्रकार का अहित कर परिणाम न होगा. बगैर शस्त्र क्रिया के ही कुछ भी खर्च न करते हुये रोग दुरुस्त हो जावेगा।

(३) करञ्ज के बीजों को या हरे पत्तों को सिल पर पीस कर महीन कल्क बना लेवे फिर उसमें अंदाज से एरण्ड का तैल मिलाकर कढ़ाई में तैल डाले जब मरहम के समान गाढ़ा हो जाय तब उतार कर सुहाता २ प्रलेप करने से भी हायड्रोसील में अपूर्व लाभ होता है।

अंत्र वृद्धि—(१) आंते जब तक अण्डकोप में न उतरी हों तब तक वात वृद्धि की तरह चिकित्सा करे। यथा—

फलकोशेतु सम्प्राप्ते चिकित्सा वात वृद्धिवत्। वाग्भट्ट

(२) यदि रोगी को क़बज़ियत रहती हो तो उसकी जठराग्नि दीपन करने के लिये वस्तिकर्म का प्रयोग करे। तथा पान अभ्यंजन और वस्तिकर्म के द्वारा नारायण तैल प्रयोग करे।

अंत्र वृद्धि मदीप्ताग्नेवस्तिभिः समुपाचरेत।
तैलं नारायणं योज्य पानाभ्यंजन वस्तिभिः॥

अण्ड कोषों में आंतें उतर आई हों तो निम्नोक्त उपचारकरे-

(३) गधर्व हस्ततैल अंत्रवृद्धि पर अच्छा काम देता है इसे बनाने की शास्त्रोक्त विधि यों है:-एरंड की जड़ ५ सेर सोंठ और जौ प्रत्येक एक २ आढ़क (१ आढ़क=२५६ तो०) परिमाण लेकर एक द्रोण (१२ सेर ६४ तो० जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय, तब उतार कर छान लेवे, फिर उस क्वाथ के समभाग दूध मिलाकर तथा एरड तैल एक प्रस्थ (३४ तो०) एरंड जड़का कल्क ४ पल (१६ तो०) एवं अदरख का कल्क १२ तो० इन सबको एकत्र कर यथा विधि से तैल सिद्ध कर लेवे। इसे ही गधर्वहस्त तैल कहते हैं। इसको नियम पूर्वक नित्य शुद्ध होकर पान करे, ऊपर से दूध या खीर सेवन करे।

(४) गोमूत्र योग - गोमूत्र ।॥ से २ तो० में गूगल (१ से ३ मा०) अथवा एरंड तैल १ से १॥ तो० मिलाकर नित्य सवेरे पान करने से अंत्रवृद्धि का नाश होता है। यह योग वात की वृद्धि पर भी अच्छा काम करता है।

(५) रास्नादिक्वाथ द्वितीय (प्रथम रा० क्वाथ वातवृद्धि पर हम ऊपर कह आये हैं देखो पृष्ठ २४) देखो।

रास्ना, गिलोय, खिरेटी, मुलहटी, गोखरू और एरंड की जड, इनको समभाग लेकर, यवकुट चूर्ण कर लेवे, नित्य सवेरे २ से ४ तो० तक चूर्ण लेकर उसमें ३२ से ६४ तो० तक जल डाल कर, मन्दाग्नि से औटावे। जब ४ या ८ तो० जल शेष रहे तब उतार के छान लेवे। फिर उसमें अंडी का तैल १ या २ तो० डाल कर पान करने से (७ या १४ दिन तक) अवश्य अपूर्व लाभ होता है।

देखो प्रमाण – रास्नामृता बलायष्टी गोकण्टैरण्डजः शृतः
एरंड तैल संयुक्तो वृद्धिमन्त्र भवां जयेत्॥
॥ शार्ङ्गधर॥

(६) करञ्ज के बीजों को सिलपर पीसकर, उसमें थोड़ा अंडी का तेल मिलावे। फिर इस मिश्रण को तम्बाकू के पत्ते पर गाढ़ा २ लेपकर वह पत्ता वृषण पर रात्रि के समय बांध देने से भी अंत्र-वृद्धि में लाभ होता है।

(७) लाख, कचनार के बीज, सोंठ, देवदारु, गेरू, कुन्दरू, इनको कांजी में पीसकर अंडकोश पर गरम २ प्रलेप करने से अंत्रवृद्धि दूर होती है। यथा—

लाक्षा कांचन का बीजं शुंठी दारुचगैरिकम्।
कुन्दरूकांजिकैर्लेप्यमुष्णमन्त्र विवर्धने॥ योगचिंतामणि॥

(८) पीपल, जीरा, कूठ, बेर सुखाया हुआ, गोबर इनको कांजी में मिलाकर लेप करने से भी उपरोक्त परिणाम होता है।

यथा—पिप्पली जीरकं कुष्ट बदरं शुष्क गोमयम् ।
कांजिकेन प्रलेपोयमन्त्रवृद्धि विनाशनः ॥ वृ० नि० ॥

(६) बालकों की अन्त्रवृद्धि पर केवल पलाश की छाल का काढ़ा पिलाने से ही फायदा होता है। कहा भी है—

अन्त्रवृद्धि शमनाय किंशुकत्वक्कषायमपि पाययेच्छिशुम ॥
॥ वैद्यमनोरमा ॥

(१) ब्रध्न या कुरण्ड चिकित्सा—हरड़ को गोमूत्र में औटाकर अरण्डी के तैल में भूने फिर इसका चूर्ण सेंधा नमक मिला कर गर्म जल के साथ पीने से बहुत दिनों का भी कुरण्ड रोग नष्ट होता है। यथा—

गोमूत्र सिद्धांरुबु तैल भृष्टां हरीतकी सैंधव चूर्ण युक्तम ।
खादन्नरः कोष्ण जलानुपानान्निहंति कूरंटमतीव वृद्धम ॥
वृ० नि० र०

अथवा—हरड़ को अन्डी के तैल मे भून कर, पीपल और सेंधा नमक मिलाकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्ण को यथा प्रमाण सेवन करने से ब्रध्न रोग दूर होता है। यथा—

भ्रष्टश्चैन्ड तैलेन कल्कः पथ्या समुद्भवः ।
कृष्णासैंधव सयुक्तो ब्रध्नरोग हरः परः ॥ बंग ॥

नोट—ब्रध्न और कुरण्ड के विषय में पृ० ११ देखो।

(२) शंबूकादि लेप—गौ का घी छोटे २ शङ्खों में (घोंघों में) भर कर सात दिन तक धूप में रख देवे। फिर सब घी एकत्र कर,

उसमें अन्दाज से घृत का चौथा हिस्सा सेंधा नमक मिला कर कुरण्ड पर लेप करे। अवश्य ही कुरण्ड का नाश होता है।

यथोक्तं—शंबूकोदर निहतं गव्यं सप्ताह मातपे सर्पि.।
स्थितमपि हंति कुरंड सैंधव चूर्णान्वतं लेपात्॥ अ० र०

(३) सेंधा नमक और घी समभाग एकत्र मिला, किसी चौड़े तांबे के पात्र में धर कर, धूप में घिसने से, जो मल निकले उसे ग्रहण कर कुरण्ड पर दिन रात लगाने से अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुआ कुरंड भी शीघ्र आरोग्य हो।

(४) भारङ्गी जड़ को जल में पीस कर प्रलेप करने से कुरंड, गण्डमाला और वृद्धि रोग दूर होते हैं। यथा—

यथाम्बुनातु संपिष्टं मूलं भार्ग्याः प्रलेपनात्।
कुरण्ड गण्डमालांच हन्त्यवश्यं न संशयः॥ बंग॥

(५) गोखरू सेंधा नमक, सोंठ, नागरमोथा, देवदारु, वायबिडंग, पाषाणभेद और लोध्र इन आठ द्रव्यों का महीन चूर्ण कर (सब द्रव्य सम भाग लेवे) नित्य सवेरे दो माशा चूर्ण (बालकों को आधा माशा या १ मा०) घृत में मिला कर सेवन कराने से बात जन्य ब्रध्न दूर होता है। प्रमाण—

श्वदंष्ट्रा सिन्धु विश्वाब्द दारु कृमिहराश्मभित्।
लोध्रचूर्ण घृतेनाद्या द्वात ब्रध्न हरं परम्॥ बङ्ग॥

अब वृद्धि सम्बन्धी कुछ विशेष महत्व की बातो का विचार कर्तव्य है।

नोट नं० १ –पथ्यापथ्य–रेचन, वमन, रक्तनिकर्ष (?) खुलाना, स्वेदन, प्रलेप, लंगोट पहने रहना, गरम जल से स्नान करना (किन्तु सिर ठंडे जल से धोना) औटाया हुआ ठंडा जल अथवा गरम जल ही दोषबलानुसार पान करना। लाल च वलों का भात, मूँग, मसूर या अरहर की दाल, गेहूं की रोटी मटकी या हांडी में धरा हुआ घृत, छांछ, तांबूल और शहद का सेवन करना सहंजने की फली, परवल, पुनर्नवा, त्रिफला, अमृत, चंदन, गाजर और लहसन इनने सब आहार विहार पथ्यकर हैं।

नये चावलो का भात, उरद पिट्ठी के पदार्थ, मिठाई आदि का सेवन, पका केला, अनूपदेश के पशु पक्षियों का मांस, दही दूध पोई का साग, अजीर्ण रहने पर भी भोजन, गरिष्ट (भारी या जड़ पदार्थों का भोजन) दिवा, निद्रा, मल, मूत्र और वीर्य के वेग को रोकना, तेल की मालिश, हाथी घोड़े पर बैठना, अति व्यायाम, मैथुन, उपवास, नित्य स्नान, शीतल जल पान इत्यादि अनिष्ट-कारक हैं। निदानोक्त आहार-विहार का भी त्याग करना चाहिये।

नोट नं० २—फुटकल विशेष प्रयोग—

(१) जटामांसी, कूट, पत्रज, इलाइची, रास्ना, काकड़ासिंगी चित्रक, वायविडग, असगंध, शिलाजीत कुटकी, सेंधानमक तगर, कूड़ा और अतीस ये सब १–१ तो० लेकर थोडे जल के साथ सिल पर पीस कल्क कर लेवे फिर इस कल्क मे ६० तो० घी डालकर मन्दाग्नि से पकावे बाद में उतार कर उसमें धतूरा गोरखमुंडी, अंड, नींव और कटेरी इनके पत्तो का रस ६४ तो०

दूध ६४ तो० डालकर पुनः मन्दाग्नि पर औटाकर घृत सिद्ध कर लेवे। इस घृत के सेवन से हर प्रकार की अंडवृद्धि नष्ट होती है। यह योग निघण्टूरत्नाकर का है, इसका नाम मांस्यादिघृत है।

(२) पारा गंधक समान भाग लेकर दोनों के बराबर स्वर्ण माक्षिक इन तीनों को एकत्र कर हरड़ के काढ़े में तीन दिन खरल करे फिर अंडी के तैल में तीन दिन खरल करे। यह 'वृद्धनाशन रस' सिद्ध हो गया है। कहा है—

रसगंधौसमौताभ्यां द्विगुणं हेम माक्षिकम्।
पथ्यारसेनत्रिदिनं रुबुतैलेन बासरम् ॥
मर्दित सिद्ध मायाति रसेन्द्रो वृद्धि नाशनः ॥
॥ नि० रत्नाकर ॥

इस वृद्धि नाशन रस की मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक है। अनुपान चने का क्षार अथवा हरड़ और नवसादर के चूर्ण के साथ अथवा केवल अंडी के तैल के साथ।

(३) हाथी के गोबर में इन्द्रायण की जड़ और सेंधानमक मिला थोड़े कड़वे या अंडी के तैल में युक्त करके गर्म करके पट्टी बांधकर सो रहे इससे बाज़ वक्त पूरा फायदा होते नज़र आया है। यह प्रयोग पं० श्रीनिवास त्रिपाठी वैद्यराजजी का है।

(४) ग्लीसरीन और विलाडोना समभाग एक ही में मिला कर रूई की फुरहरी से अंडकोषों पर चुपड़ देवे। एक बार लगाते ही लाभ होगा। दो तीन रोज़ में अंडकोष अपनी असली दशा में

पहुंच जायंगे, दवा लगाने से कोई कष्ट जलन आदि नहीं होती। दिन में तीन बार दवा लगानी चाहिये यह प्रयोग श्रीयुत गंगाप्रसाद शर्मा वैद्यशास्त्री का अनुभूत है।

(५) सुअर की चर्वी आध पाव आमाहल्दी २ तो॰ फिटकरी २ तो॰ इन दोनों को बारीक पीसकर एक कागज पर चर्बी के साथ गाढ़ा लेप कर दे फिर फिटकरी और आमाहल्दी को चर्वी के ऊपर थोड़ी २ बुरक दे, कुछ गर्म करके अंडकोष पर बांध देवे यह औषधि चार रोज के लिये है, पूरे फायदे के लिये यह एक हफ्ता सेवन करनी चाहिये। यह प्रयोग श्री वैद्य पुरुषोत्तमलाल चतुर्वेदी का शतशोऽनुभूत है।

नोट नं० ३—अन्त्रवृद्धि Hernia सम्बन्धी पाश्चात्य उपचार जिसे अंत्रवृद्धि हुई हो, उसे चाहिये कि आंतें नीचे न सरकने पावे एतदर्थ दबाने वाला पट्टा (Truss ट्रूस) का उपयोग करे। ये पट्टे अंत्रवृद्धि के स्थानानुसार भिन्न २ प्रकार के होते हैं। इन पट्टों के व्यवहार में मुख्य बात इतनी ही है कि वे ढीले न हों उनका दवाव इतना जोर का होना चाहिये, कि अन्तः प्रविष्ट अंतड़ियां बाहर न सरकने पावे।

नाभ्यंत्र वृद्धि (Umbilical Hernia अम्बाइलिकल हर्निया) यह विकार प्रायः छोटे बच्चों में विशेष देखने में आता है। इसे भी आयुर्वेद में शायद कुरंड रोग कहा है—"य. पित्तदोषेण कुरंड रोगो भवेच्छिशोर्दक्षिणमुष्कदेशे" (इसकी चिकित्सा हम

ऊपर बतला आये हैं) यह रोग मुष्कदेश अर्थात् अण्डकोष में होता है ऐसा जो कहा उपलक्षण मात्र है, नाभी के पास भी हो सकता है अर्थात् जोर कर स्नायु की निर्बलावस्था में नाभी प्रदेश में ऊपर को उभर आती है। जिसके कारण नाभी प्रदेश फूला हुआ बड़ा दिखलाई पड़ता है उस स्थान पर असह्य वेदना होती है। इसके शमनार्थ इस प्रकार उपाय करना चाहिये– धीरे २ हलके हाथ से अनडियों को अन्दर प्रविष्टकर तत्काल कपास में गूंढ़कर रक्खा हुआ एक बड़ा पैसा (आधा आना) अथवा उसी के समान गोल तथा चौड़ी कोई दूसरी वस्तु नाभी के छिद्र पर धर कर ऊपर से ऊनी वस्त्र का पटबँध उदर के आस पास कसकर बांध देवे।

वंक्षणांत्रवृद्धि (Inguinal Hernia) यह विशेषकर स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को ही अधिक होता है इसे ही अपने यहां वृध्न कहा गया है। ऊर्वन्त्रवृद्धि (Femoral Hernia) यह उरू या जानुके ऊपरी भाग में होता है। यह पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक पाया जाता है। और अवरुद्ध अंत्रवृद्धि (Strangulated Hernia) यह अंत्र वृद्धि की यह एक भयकर तीसरी अवस्था है जिसकी अपेक्षा करने से मरण अवश्यम्भावी होता है। इसका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। (देखो तीसरा प्रकार पृष्ठ ८ में देखो) इन सब अंतवृद्धियों में पश्चात्य वैद्य यथाशक्ति अनडियों को बाह्योपचार द्वारा और यथा स्थान प्रवेश कराने का प्रयत्न करते हैं। और जब देखते हैं कि उसका

अन्दर जाना अशक्य है। नश्तर (शस्त्र क्रिया (Operation) जो कि प्रायः कष्टसाध्य ही होता है।

डा० कल्याणसिंह मिश्र (फर्रुखाबाद) मुझको पत्र में लिखते हैं, कि अन्त्रवृद्धि पर जो दुख... पार ... जहां तक हो सके वहां तक चिकित्सा ... आपरेशन ... के अवसरों ... किया ... आराम हो जाता है। ... को आराम हो ... है। औषधि ... से भी ... आराम हो चुके हैं। यह ... अनुभव ... निम्न लिखित योग अनुभूत है: -

अच्छी पीली हड़ ... आधी छटांक, ... पांच तोला, मिश्री कूजे की सफेद ... छटांक २ तोला १ मा० इन चीजों को कूटकर तारों की बारीक ... (चलनी) से छान लेवे और उसमें असली सोना मक्खी (स्वर्ण माक्षिक ... के रस में निबू ... आग में तपा २ लाल करके ७१ बार बुझाई हुई और खुश्क सुरमे के माफिक बारीक पिसी हुई शुद्ध) एक छटांक इस चूर्ण में अच्छी तरह से मिला देवे फिर उस चूर्ण के अन्दाज शहद (आंख के सामने प्राप्त किया हुआ) ३ छटांक १ तोला ६ मा० मिला देवे, और कांच के वर्तन या अमृतबान में रख छोडे और प्रातः सायं दस २ मासा खावे। इस प्रकार से बनाकर कम से कम

४० दिन तक खाना चाहिये। जहां कि ऐसे रोगी आपरेशन से मर चुके थे ईश्वर कृपा से वहां आज तक ११ रोगी तो मेरे हाथ से अच्छे हो चुके हैं। ×

आगे डाक्टर साहब ने कुछ पथ्यापथ्य बतलाया है, उसमें कोई नई बात नहीं है। ऊपर के नोट नं० १ में उसका समावेश हो चुका है।

नोट नं० ४—वृषण शोथ—यदि वृषणों में किसी कारणवश केवल शोथ या सूजन हो आई हो तो—

(१) बच और सरसों के कल्क का प्रलेप करने से दूर होता है। जैसा कि कहा है—

×इसे आयुर्वेदिक चिकित्सा का प्रभाव कहें या केवल ईश्वर की कृपा ? हमने भी ईश कृपा से कई रोगियों को अच्छा किया है किन्तु किसी एक ही औषधि से नहीं। दोष, काल, देश, बलानुसार हमें भिन्न २ प्रयोगों का आश्रय लेना पड़ा है जिनमें से प्रायः सब प्रयोग हम ऊपर बतला चुके हैं। तथापि डाक्टर साहब आप विशेष धन्यवादके पात्र है, जो आप केवल इसी प्रयोग के द्वारा कई मृत प्राय रोगियों को दुरुस्त करते हैं। क्या इस प्रयोग के साथ ही साथ आप कोई बाह्योपचार प्रलेपादि नहीं करते ? यदि न करते हों तो यह आपकी एक बड़ी अपूर्व शोध कही जा सकती है। बड़े आनन्द की बात है जो आपने इसे प्रकट कर दिया है। हम भी प्रसंगानुसार इसकी अवश्य परीक्षा करेंगे। —लेखक

"बचा सर्षप कल्केन प्रलेपः शोथ नाशनः" ।

(२) त्रिफला का गोमूत्र में काढ़ा करके पीवे अथवा काढ़ा न करके केवल त्रिफला चूर्ण २ से ४ मा० तक गोमूत्र के साथ नित्य प्रातः सेवन करने से भी वृषण सूजन दूर हो जाती है।

नोट नं० ५—अण्डरतन—कभी २ स्नायु शैथिल्य के कारण अंडकोष ढीला पड़ जाता है। उस समय वृषण स्थित गोलियों के बोझा से वृषण किसी घड़ी के पेंडुलम के समान लटक पड़ता है। ऐसे आदमी को चलने फिरने में बड़ी तकलीफ होती है। इसे फोतों को उतर जाना कहते हैं। इसके लिये निम्न प्रयोग काम में लावें।

(१) गनिआरी (अग्निमंथ जिसे मरेठो में 'टांकल' कहते हैं) के पत्ते सिल पर बांट कर तथा कुछ गरम कर अण्डकोष पर बांध देवे। अथवा—

(२) छुईमुई (लज्जालु) के पत्ते बांट कर उपरोक्तानुसार बांध देवें।

(३) किंकिणी (व्याघ्री—इसके वृक्ष वन और पर्वतों पर होते हैं। इसके वृक्ष पर बेरी के समान बांके कांटे होते हैं. फल, लम्बे, गोल और बीच में गांठदार होते हैं, फल का मध्य भाग हिंगोट के समान होता है) इसके पत्तों का स्वरस ४ पैसे भर, उसमें काली मिर्च ४ माशा बांट कर खावे।

उक्त तीनों प्रयोग 'पदेजी' के हैं।

॥ इत्यलमतिविस्तरेण ॥

प्रत्येक वैद्य के अवश्य देखने योग्य पुस्तकें।

शिफाउल-अमराज

दो भाग

यह यूनानी साहित्य का सारभूत चिकित्सा ग्रन्थ है, सूद में यूनानी चिकित्सा का समस्त निचोड़ चतुर हकीम ने अपने अलौकिक हिकमत से इसमें भर दिया है। आयुर्वेदीय चिकित्सा में जिन रोगों का अति सूक्ष्म वर्णन है, कुछ आयुर्वेदीय साहित्य के लुप्त हो जाने के कारण जो-जो रोग आयुर्वेद में नहीं हैं, उनका विशद् वर्णन इस ग्रन्थ में है। चिकित्सा कार्य में जिन्हें विशेष योग्यता प्राप्त करना हो, रोगों के कारण उनका कुपित हो स्थानान्तर प्राप्त कर जो-जो रूप बनते हैं उनका उसी रूप में सुन्दर चिकित्सा क्रम वर्णित है, चतुर चिकित्सक ने चिकित्सकों के विचार श्रम कितना हलका कर दिया है कि रोगी को देख झट से ही रोग का लक्षण और चिकित्सा सामने नाचने लगती है, सच पूछिये तो यह ग्रन्थ वैद्यों के लिए एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। चिकित्सा रोग परीक्षा में, विवेचनाशक्ति में यदि अलौकिकता प्राप्त करना तो अवश्य मंगवा कर पास रखिए और मनन कीजिए, देखिए यूनानियों ने कितना अपने यहां से संग्रह कर उसको कैसा सुन्दर करके अर्थात् विशद करके सांचे में ढाला है, यह देखते ही ब है। मूल्य दोनों भाग २॥) रुपये